प्रकाशक .

म. विनयसागर
सयुक्त सचिव
प्राकृत भारती अकादमी
3826, मोतीसिह भोमियो का रास्ता
जयपुर-302003

हरखचन्द नाहटा
अध्यक्ष,
पारस प्रकाशन,
21, आनन्द लोक
नई दिल्ली-110049

प्रथम सस्करण . सन् 1995

मूल्य अस्सी रुपये मात्र

मुद्रक—

छुट्टनलाल अग्रवाल बुक बाइंडिंग वर्क्स, जयपुर

Editor-in-chief : Prakrit Bharati Pushpa-98

M. Vinaysagar

Nyaya Visharad Yashovijayopadhyaya's

JNANA SARA

(Essence of knowledge)

Hindi Translation

Gani Maniprabh Sagar

English Translation

Rita Kuhad and Surendra Bothara

Publisher

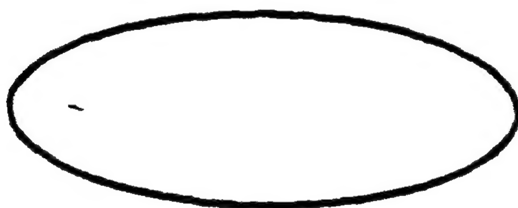
Prakrit Bharati Academy, Jaipur

Paras Prakashan, New Delhi

अर्थ-सहयोग



श्री गौडी पार्श्वनाथ जैन श्वे. मूर्ति पूजक संघ की पेढी



सांचोर-343041
(जिला जालोर-राजस्थान)

प्रकाशकीय

भारतीय वाड्मय को जैन परम्परा ने प्रचुर समृद्धि प्रदान की है। इस योगदान के पीछे अनेको जैन श्रमणो तथा विद्वानो की अखूट साधना का हाथ रहा हैं। जैसे आकाश के असख्य तारा गण अपनी आभा निरन्तर बिखराते रहते है वैसे ही भगवान महावीर की परम्परा के असख्य श्रमणों-विद्वानो की कृतियो की आभा से भारतीय ज्ञानाकाश आभासित है। इन ज्ञान-साधको के समूह मे कतिपय ऐसे व्यक्तित्व भी उभरे है जिन्हे सूर्य-चन्द्र की सज्ञा दी जा सकती है। उपाध्याय यशोविजयजी ऐसे ही अनुपम मनीषी थे। उन्हे हरिभद्रसूरि तथा हेमचन्द्राचार्य की परम्परा का अतिम बहुमुखी प्रतिभावान विद्वान माना जाता है।

प्राकृत भारती तथा पारस प्रकाशन ऐसे प्रखर ज्योतिर्धर मनीषी की एक प्रसिद्ध आध्यात्मिक कृति के प्रकाशन को गौरव का अवसर मानती है। नवीन-न्याय के जैन युग का आरभ करने वाले यशोविजय जी की तर्काधारित चिन्तन शैली मे खरतरगच्छ के महान अध्यात्म-योगी श्रीमद् आनन्दघनजी से मिलन के पश्चात् एक अनोखा परिवर्तन आया। वे आध्यात्मिक और समन्वय-मूलक चिन्तन दिशा की ओर मुड गये। ज्ञानसार मे वही आध्यात्मिक चिन्तन तथा गीता व योग-दर्शन का समन्वय दिखाई देता है। हमे विश्वास है कि हिन्दी पद्य-गद्यानुवाद तथा अग्रेजी अनुवाद सहित यह ग्रन्थ हमारे चिन्तन शील पाठको को नई दिशा प्रदान करेगा।

हम गणिवर्य मणिप्रभसागर जी के आभारी हैं कि उन्होने अपने काव्यमय अनुवाद को प्रकाशित करने का अवसर प्रदान किया। अग्रेजी अनुवाद के लिए श्रीमती रीता कुहाड तथा श्री सुरेन्द्र बोथरा का धन्यवाद।

श्री गौडी पार्श्वनाथ जैन श्वे मूर्ति-पूजक सघ की पेढी, साचोर का अर्थ सहयोग इस प्रकाशन हेतु हमे मिला, पेढी के प्रति हमारा आभार।

हरखचन्द नाहटा
अध्यक्ष,
पारस प्रकाशन
नईदिल्ली

म. विनयसागर
निदेशक,
प्रा. भा. अ.
जयपुर

प्रवेश

आत्मा परमात्म पद की सर्वोच्च स्थिति को प्राप्त करे, इसी एकमात्र लक्ष्य से उपाध्याय श्री यशोविजयजी म ने अध्यात्म-प्राण ज्ञानसार ग्रन्थ की रचना की है।

हमने अपनी जीवन पद्धति द्वारा ससार का भवभ्रमण ही बढ़ाया है ! हमने अपनी ही अविचारी प्रवृतियो द्वारा चोर और लुटेरो को निमत्रित किया है। आत्मगुणों का विनाश और सासारिक प्रवृत्तियो का विस्तार ही हमारे पुरुषार्थ का केन्द्र बना है। जिन आत्मगुणो के हम स्वामी है, जिनका विकास करके हम अपनी ससारयात्रा को विराम दे सकते है उन ज्ञान, दर्शन और चारित्र को तो जैसे हमने निष्कासित कर दिया है और इसी कारण आज हम न चाहते हुए भी जन्म और मृत्यु के पाटो के बीच भयकर रूप से फसे हुए है। हमारी इस भयानक ससार यात्रा के लिये हम स्वय उत्तरदायी है और इसी को उत्तराध्ययन सूत्र मे एक गाथा द्वारा अभिव्यक्त किया गया है —

अप्पा नई वेयरणी अप्पा मे कूडसामली।
अप्पा कामदुहा धेणु अप्पा मे नंदण वणं॥

हे आत्मन् । तू स्वय ही नरक की वैतरणी नदी है और तू स्वय ही अद्‌भुत चमत्कारी कामधेनु गाय है, तू ही शाल्मली वृक्ष है तो तू ही स्वर्ण का नदन वन है।

भयकर और जहरीले कषायो को सम्मान के साथ आमत्रित करके हमने स्वय को नरकगामी बनाया है। हमारी यह अनादिकाल से चली आ रही ससारयात्रा समाप्त हो इसी बात को लक्ष्य मे रखते हुए यह ग्रन्थ निर्मित हुआ है।

इस ग्रन्थ के माध्यम से किस स्थिति मे हम आत्म-शुद्धि की ओर गतिशील बन सकते हैं उन माध्यमो का दिग्दर्शन करवाया गया है।

ज्ञानसार का जैसे-जैसे पठन-पाठन करते जाते है, ससार के पदार्थो मे आसक्त चेतना कुछ समय के लिये तो अध्यात्म के गहरे सागर मे डूबने लगती है। पू उपाध्यायजी म गभीर और तार्किक विद्वान होते हुए भी आत्मसमर्पित सत थे और इसी कारण उनके छोटे-छोटे श्लोको मे भी आत्मा को गहरी और मार्मिक चोट करने वाली साधना पूर्ण चर्चा हैं।

ज्ञानसार मे 32 अष्टक है। आठ-आठ गाथा प्रत्येक मे होने के कारण इन्हे अष्टक के रूप से सबोधित किया गया है। इन प्रत्येक अष्टको मे भिन्न-भिन्न विषय है। प्रथम अष्टक मे वास्तविक और काल्पनिक पूर्णता का विवेचन है। उपाध्याय जी स्पष्ट रूप से घोषणा करते है कि भौतिक पदार्थो से प्राप्त पूर्णता काल्पनिक पूर्णता है क्योकि वह आरोपित है। यह आरोपित पूर्णता कभी भी विनष्ट हो सकती है। जबकि आत्मज्ञान की प्राप्ति एव आत्मगुणो का विस्तार ही वास्तविक पूर्णता है। इसकी पुष्टि मे उन्होने विभिन्न तर्क भी प्रस्तुत किये है।

द्वितीय मग्नताष्टक है। मग्न आत्मा को आभ्यतर आत्मा के रूप मे भी जान सकते है। इस आत्म-मग्न स्थिति मे आत्मा का कर्ता एव भोक्ता भाव समाप्त हो जाता है और उसके स्थान पर उसमे ज्ञाता और द्रष्टा भाव विकसित हो जाता है। जब तक हमारी चेतना मे पर-द्रव्य के प्रति कर्ता और भोक्ता भाव है तभी तक कषायो की उत्पत्ति है और कषायो की उत्पत्ति ही कर्मबधन का कारण बनती है। एक प्रकार से इस अष्टक द्वारा आत्मा का साक्षी भाव एव साक्षी भाव से उत्पन्न आनद की स्थिति का विवेचन किया हैं।

तृतीय स्थिरता का अष्टक है। साक्षी भावो की उत्पत्ति आत्म-स्थिरता मे ही उत्पन्न होती है। आत्मा स्वय अखड और अक्षय आनद का स्वामी है। पर मोहजनक चचलता के कारण ही क्षणिक सुखो को प्राप्त करने के लिये अपने अतर मे छिपे आत्मानद को विस्मृत कर बैठा है। साधना मार्ग की गभीरता, स्थिरता के अभाव मे सभव नही है। मन, वचन और काया की स्थिरता अध्यात्म की प्रारभिक पर महत्वपूर्ण शर्त है। जीवन की अस्थिरता रूप कालिमा के समक्ष स्थिरता निष्कलंक प्रकाशपुज है।

गीता मे श्रीकृष्ण ने भी स्थितप्रज्ञता को सर्वोत्कृष्ट स्थिति कहा है परन्तु ऐसी उत्कृष्ट स्थिति को प्राप्त करना सहज नही है। इसके लिये इष्ट-अनिष्ट सभी स्थितियो के प्रति उदासीनता, स्पृहाओ का त्याग एव राग-द्वेष का समूल नाश करना पडता है।

'दु खेष्वनुद्विग्नमना सुखेषु विगतस्पृह ।
वीतरागभयक्रोध स्थितधीर्मुनिरुच्यते ॥'

चतुर्थ मोहाष्टक है। मोहभाव के कारण ही ससार का परिभ्रमण है और उसका त्याग मोक्ष है। जिसका जैसा स्वभाव है उसको उसी रूप मे न समझना मोह अथवा मिथ्याबुद्धि का परिणाम है और जिसका जैसा स्वभाव है उसको उसी स्वरूप मे समझना मोक्षमार्ग की उत्कृष्ट सीढी है।

अष्ट कर्मो मे सबसे खतरनाक मोह ही है। अगर मोहनीय कर्म पर विजय प्राप्त हो जाय तो ऐसा मानना चाहिये कि सेनापति पर नियत्रण स्थापित हो चुका है। जिस सेना का सेनापति नियत्रण मे आ जाय, उस सेना के पाव उखडते समय नही लगता।

दु खमय ससार को सुखमय मानकर उसमे आसक्त रहने का मुख्य कारण मोहनीय कर्म का ही परिणाम है।

'एगोह नत्थि मे कोई नाहमनस्स कस्सवि'

मै एकाकी हूँ। ससार के सारे सबध नाशवान है। इस प्रकार की भावना मोह बधन को तोडने के लिये तीखी तलवार है।

इसके बाद ज्ञानाष्टक है। मोह का त्याग सम्यग्ज्ञान की स्थिति मे ही सभव है। विद्वत्ता और सम्यग्ज्ञान मे अतर है। विद्वत्ता के द्वारा हम पडित की उपाधि को प्राप्त कर सकते है, परन्तु ज्ञानी नही बन सकते। मात्र विद्वत्ता ससार परिभ्रमण का कारण बनती है। जबकि सम्यक् ज्ञान मोक्ष प्राप्ति का साधन है। तत्त्वार्थ सूत्र का प्रारभ ही इस सूत्र से होता है-

'सम्यग्दर्शनज्ञानचारित्राणि मोक्षमार्ग '

सम्यग्ज्ञान आत्म-ज्ञान भी कहलाता है। आचार की अपेक्षा से भी ज्ञान महत्वपूर्ण है, क्योकि ज्ञान के प्रकाश मे ही आचारदर्शन सभव है।

इसके बाद शमाष्टक है। समता नदी वह मीठी और पवित्र धारा है जिसमे हृदय के राग-द्वेष की सारी मलिनता बह जाती है। जिसने एक बार समता का माधुर्य चख लिया वह कभी भी राग-द्वेष के विषमय प्याले की ओर ऑख नही उठाता। सृष्टि के प्राणि मात्र के प्रति अपनत्व भावो का विस्तार समता का मीठा फल हैं। वह आत्मा की परिपक्व अवस्था हैं। इसी का दूसरा नाम वीतरागता है।

गीता मे समदृष्टि की व्याख्या इस प्रकार उपलब्ध होती है-

'विद्या-विनय-संपन्ने ब्राह्मणे गवि हस्तिनि।
शुनि चैव श्वपाके च पंडिता समदर्शिन ॥'

समदृष्टि पडित विद्या विनय युक्त ब्राह्मण मे, गाय मे, हाथी मे, कुत्ते और हरिजन मे समान दृष्टिकोण रखता है।

समभावी पुरुष बाह्य स्वरूप को न देखकर मात्र आत्मस्वरूप को देखता है। और आत्म स्वरूप की अपेक्षा से सृष्टि की समस्त आत्माए समान है।

इसके बाद इन्द्रियजयाष्टक है। आत्मा और परमात्मा के मध्य का अतर बताते हुए आनदघनजी म कहते है—

'जेणे ते जित्यो रे तेणे हूँ जीतीयो रे,
पुरुष किस्यु मुझ नाम'

हे प्रभु । जिन इन्द्रयो पर आपने नियत्रण स्थापित कर लिया था, उन इन्द्रियो ने मुझ पर अपना स्वामित्व स्थापित कर लिया हैं। इन्द्रियो की गुलामी ही हमारे समस्त दु खो की जनेता हैं। इन्द्रियो की गुलामी करते-करते इस आत्मा का अनत समय बीत गया। फिर भी गुलामी करते अभी तक तृप्ति नही हुई।

एक कवि ने लिखा है-

'अग्नि जो तृप्ति इन्धने नदी थी जलध पुराय मेरे लाल
तो विषय सुख भोग थी जीव ए तृप्त थाय मेरे लाल'

इस अष्टक मे उदाहरण सहित वताया गया है कि मात्र एक इन्द्रिय की गुलामी प्राण त्याग की स्थिति का निर्माण कर देती है, तो पाचो इन्द्रियो

की गुलामी हमे कितनी खतरनाक स्थिति मे पहुचा सकती है, इसकी तो मात्र कल्पना ही की जा सकती है।

हेमचद्राचार्य ने ससार की परिभाषा देते हुए योगशास्त्र मे कहा है-

क्रोध, मान, माया और लोभ तथा इन्द्रियो की गुलामी मे आसक्त आत्मा ही ससार है और इन पर विजय प्राप्त करना ही मोक्ष है।

औदयिक भाव रूप गृहस्थाश्रम से सबधित धर्मों का त्याग किये बिना इन्द्रियो पर विजय पाना सभव नही है, अत इन्द्रिय जयाष्टक के बाद त्यागाष्टक का कथन किया गया है। अनादि अनत काल के इस ससार के परिभ्रमण मे जीव अनेक जीवो से सबद्ध होता है। यह सयोग बाद मे वियोग मे बदल जाता है। यह जानते हुए भी जीव उन सबधो के प्रति आसक्त हो जाता है और इस कारण दु खी बनता है। जो हमारा नही है या जिनका सबध समाप्त हो जाने वाला है, उनके प्रति राग भाव का त्याग करना ही आत्म-स्वभाव की परिणति का मुख्य आधार है।

इसके बाद क्रियाष्टक कहा गया है। क्रिया के अभाव मे आत्म-धर्म मे स्थिरता नही आती।

'ज्ञानक्रियाभ्याम् मोक्ष'

अर्थात् ज्ञान और क्रिया की युति ही मोक्ष का कारण है।

तृप्ति अष्टक मे आत्म-भाव की पूर्णता का दर्शन है। आत्म-रुचि जगते ही समस्त प्रकार की अतृप्तियो का अन्त हो जाता है और आत्मा परिपूर्ण तृप्त भावो मे मग्न हो जाता है।

यह निश्चित तथ्य है कि जो आत्म-भावो मे तृप्त हो गया वह निर्लिप्त रहता है। ससार को काजल की कोठरी की उपमा दी गई है। उसमे जो भी रहेगा उसे दाग लगेगा ही। परन्तु जो आत्म-भाव मे डूब गया वह ऐसी स्थिति मे भी अलिप्त रह सकता है। महामुनीश्वर श्री स्थूलिभद्र जैसे महापुरुष का उदाहरण इन भावो की पुष्टि का प्रेरक और जीवत प्रतीक है। निर्लेपाष्टक इन्ही भावो को स्वर देता है।

निर्लिप्त साधक को ससार इष्ट नही होता। अत उसे किसी भी पदार्थ की कोई स्पृहा नही होती। उसे मात्र स्वरूप-बोध ही इष्ट होता है।

इन भावो की पुष्टि के लिये निर्लेपाष्टक के बाद निस्पृहाष्टक कहा गया है। बाहर से निस्पृह जो हो गया वह अन्तर के अनत वैभव को पा गया।

निस्पृह मानव परम मौन हो जाता है। मौन का अर्थ न बोलना, इतना ही नही है। मौन का अर्थ है—इन्द्रियो के साथ आसक्ति भरे व्यवहार का त्याग । जिस जीव को स्वरुचि भाव जग गया वह इन्द्रियो को उनके यथार्थ रूप मे पहिचान लेता है और इस कारण वह उनके प्रति आसक्त नही होता। परम मौन हो जाता है। यही तथ्य मौनाष्टक व्यक्त करता है।

मौन वही हो सकता है जिसने आत्मविद्या प्राप्त कर ली हो। इसी कारण मौनाष्टक के बाद विद्याष्टक कहा गया। विद्या का तात्पर्य शब्दो का सग्रह नही। बल्कि जो आत्मा के यथार्थ रूप का परिचय दे वही विद्या है।

आत्म-विद्या को प्राप्त करते ही साधक का जड चेतन भेद रूप विवेक जग जाता है। विवेक का अर्थ है हेय और उपादेय का बोध होना। जिसे शरीर और आत्मा का भेद समझ मे आ गया वह विवेकी हो जाता है। इसी कारण विद्याष्टक के बाद विवेकाष्टक का कथन है।

कदाग्रह का त्याग करके जो व्यक्ति स्याद्वाद का सिद्धान्त स्वीकार करता है वह राग-द्वेष दोनो मे सतुलित रहता है। उसी सतुलन को माध्यस्थ्य भाव कहा है। इसी भाव का चिंतन मध्यस्थाष्टक मे किया गया है।

जो आत्म-भावो में सतुलित हो गया वह सदा भयरहित हो जाता है। क्योकि भय सदा ससार की आसक्ति के कारण ही होता है। आसक्ति मिटते ही साधक निर्भय हो जाता है। यह चिंतन निर्भयाष्टक मे किया गया है।

फिर वह आत्मा ससार की प्रशसा या निंदा मे नही डूबता। उसे प्रशसा के प्रति किसी प्रकार का कोई राग नही होता। अत्यन्त सूक्ष्मता के साथ इस तथ्य का विश्लेषण अनात्मशसाष्टक मे किया गया है।

जीव के अनादि काल के भ्रमण का मूल कारण है तत्त्वदृष्टि का अभाव। इसके कारण वह वस्तु को उसके यथार्थ रूप मे नही देख पाता। वह सदा राग या द्वेष की दृष्टि से वस्तु को मूल्य देता है और इसी कारण

कर्मबधन की प्रक्रिया को जन्म देता है और मिथ्यात्व के अधकार मे भटकता रहता है। तत्त्वदृष्टि नामक अष्टक मे इस तत्त्व का निरूपण किया गया है।

बाह्य दृष्टि से विमुख हुआ आत्मा अन्तर-दृष्टि के प्रयोग के कारण अन्तर की विपुल समृद्धि का स्वामी बन जाता है। इसी कारण तत्वदृष्टि अष्टक के बाद सर्वसमृद्ध्यष्टक का कथन किया गया।

जो साधक कर्म और कर्म के परिणामो का सदा चिंतन करता है, वह राग द्वेष से मुक्त होकर समभाव मे विचरण करता है। कर्म ही हसाता है, कर्म ही रुलाता है, इस प्रकार जो कर्म के परिपाक से साक्षात्कार कर लेता है वह व्यक्ति फिर कर्म मे न फस कर आत्म-भाव मे डूब जाता है। यह चिंतन देता है-कर्मविपाकचिंतनाष्टक !

कर्म-विपाक की विचित्रता का चिंतन करता हुआ साधक ससार के प्रति उद्विग्न/उदासीन हो जाता है। फिर वह जल्दी से जल्दी ससार दशा से मुक्त होने के प्रति चिंतनशील और क्रियाशील हो जाता है। भवोद्वेगाष्टक मे इन्ही तथ्यों का खुलासा किया गया है।

जो जीव ससार के प्रति उदासीन हो गया वह फिर लोक सज्ञा मे आसक्त नही होता। उसकी क्रिया लोक दिखावे के लिये नही आत्मा के लिये होती है। उसका आचार सहज बन जाता है। वह लोक से प्रभावित नही होता। लोकसज्ञात्यागाष्टक उन लोगो के सामने लाल बत्ती रखता है जो भेद विज्ञान की बातें करते हैं पर लोक सज्ञा मे डूबे है।

अनासक्त साधक शास्त्रो के आधार पर अपने जीवन और आचार का निर्माण करते है। आप्त पुरुषो की वाणी ही शास्त्र कहलाती है। इसका विवेचन शास्त्राष्टक मे पूज्य उपाध्यायजी म ने किया है।

परिग्रह ही मूर्च्छा का आधार है। शास्त्रों मे मूर्च्छा को ही परिग्रह कहा है। यह मूर्च्छा ही ससार बढाती है। इसका त्याग किये बिना आत्ममहल की दिशा मे आगे नही बढा जा सकता। इसलिये परिग्रहत्यागाष्टक का विधान किया गया।

जिसने शास्त्रो के आधार पर चलने का निर्णय लेकर, समस्त परिग्रह का त्याग कर, आत्म-रस मे लीन होने के लिये अपने कदम बढा दिये वह आत्म अनुभव मे तल्लीन हो जाता है। अनुभवाष्टक मे कहा गया है कि अनुभव परम चिंतामणि रत्न तुल्य है।

आत्मा को आत्मा के साथ जोड़ने वाले को योग कहा है। साधक ने आत्म-प्राप्ति का निश्चय कर लिया, उसने परिग्रह का त्याग कर लिया, शास्त्र का आधार स्वीकार कर लिया, तो अब उसे साधना के मार्ग पर चलना होता है। इसी बात का सूक्ष्म निरूपण योगाष्टक मे किया गया है।

द्रव्य यज्ञ मे समिधाए होमी जाती है। यहा तो भाव यज्ञ का विधान है। कर्म रूपी समिधाओ के ज्ञान रूप यज्ञ मे तप रूप आग मे होमना होता है। यही चिंतन नियागाष्टक मे फलित हुआ है।

भावयज्ञ द्वारा जिसने अपनी कर्म समिधाओ का हवन कर दिया वह अपने समर्पण भावो को भाव-पूजा द्वारा अभिव्यक्ति देता है। इस कारण नियागाष्टक के बाद पूजाष्टक का कथन है।

भावपूजा का फलित है-ध्यान ! आत्म-स्वरूप मे डूबना ही ध्यान कहलाता है। ध्यानाष्टक मे इस चिंतन का खुलासा किया गया है।

शास्त्रो मे तप के बाह्य और आभ्यतर रूप से दो प्रकार बताये है जो क्रमश आत्म आरोहण मे मुख्य साधन बनते हैं। तप के यथार्थ रूप का बोध देता है-तपाष्टक ।

जैन दर्शन का मुख्य सिद्धान्त स्याद्वाद है। स्याद्वाद सिद्धान्त यदि व्यक्ति स्वीकार कर लेता है तो राग-द्वेष से मुक्त हो जाता है। दुनिया मे द्वद्व इसीलिये है कि व्यक्ति एक एक नय को पकडकर बैठ जाता है। यदि सर्व नयो को स्वीकार कर लिया जाता है तो विकृतिया समाप्त हो जाती हैं। इस अन्तिम अष्टक मे इसी सिद्धान्त की व्याख्या की गई है। एक तरह से यह अष्टक समस्त अष्टको का सार है।

पुद्‌गलो का पोषण करने के लिये अनेको अनेको जनम इस जीव ने व्यर्थ किये है। पर यदि एक जन्म मे पुद्‌गलो का उपयोग आत्म-शुद्धि के लिये किया जाये तो यह बार-बार का जन्म मरण सदा-सदा के लिये दूर हो

सकता है। आत्मशुद्धि कठिन अवश्य है पर असभव नही। इसके लिये परमात्म दर्शन और परमात्म वाणी का श्रवण हमारे लिये सफल और सर्वोत्कृष्ट साधन हो सकते है।

सापो से भरे बावना चदन मे कोई व्यक्ति जाना चाहे तो उसे नि सदेह खतरा रहेगा। पर वह यदि मयूर की व्यवस्था करके जाये तो वह निर्भय होकर भ्रमण कर सकेगा और इच्छित चदन प्राप्त कर सकेगा।

ठीक इसी प्रकार हमारा जीवन दुर्गुण रूपी अगणित सापो का पडाव है। अपने मिथ्यात्व और अविवेक भरे आचरण से हमने उन्हे सदा पुष्ट किया है। परमात्म वाणी रूप मयूर यदि साथ हो तो स्वत सारे दुर्गुण मैदान छोड़ जायेगे।

ज्ञानसार एक ऐसा ही अनमोल ग्रन्थ है जो हमे आत्म-गुणो की गहरी समझ देता है।

ज्ञानसार की महत्ता

दर्शन, श्रवण, वाचन, चिंतन, मनन और निदिध्यासन मे एक क्रम है। ये क्रमश गहरे होते चले जाते हैं। वर्तमान के उथले युग मे व्यक्ति दर्शन, श्रवण और वाचन तक सीमित हो गया है। उसमे वैपरीत्य दिशि के आक्रमण से सात्विकता और मौलिक ओजस्विता का अभाव हो गया है।

दर्शन अथवा श्रवण किंवा वाचन मे यदि सत्त्व की उपस्थिति हो तो स्वत अगली चिंतन और मनन की पगडडियो पर व्यक्ति अग्रसर हो जाता है।

भटके वातावरण मे दर्शन (देखना) ने दृष्टि को नही विकृति को जन्म दिया है !

श्रवण ने जीवन कला को समझाने का नही, वृत्तियो को भडकाने का काम किया है।

क्योकि चिंतन-मनन-निदिध्यासन का कोई आधार नही था।

व्यक्ति दिन-रात काषायिक और कामुक वृत्तियो के उत्तेजन मे अपनी जिंदगी हार रहा है। ऐसे उत्तप्त और सतप्त जीवन भू-भाग पर अमृत वर्षा करते हैं महापुरुष। जो ऐसे साहित्य का सर्जन करते हैं जो जीवन को जीवन-रस से सिंचित करता है।

ज्ञानसार एक ऐसा ही अनमोल चिंतन कोष है। इसमे विषयो की विविधता होने पर भी एकलक्षी परिणाम होने से क्रमवद्धता की लय स्पष्टत परिलक्षित होती है।

इस ग्रन्थ मे उपाध्याय श्री यशोविजयजी महाराज ने कही झिझोडा है, कही जगाया है, कही सहलाया है, कही दुत्कारा है, कही सत्कारा है, कही भिगोया है, कही पिरोया है, कही तोडा है, कही जोडा है, कही कान मरोडा है, कही दिया है, कही लिया है, कही उठाया है, और कही उखाडा है।

ज्ञान-द्वार से ज्ञान महल मे प्रवेश की यह एक अद्‌भुत कृति है। मुख्य रूप से श्रमण वर्ग को निर्दिष्ट कर लिखी गई यह कृति हर आत्म-जिज्ञासु का प्रेरणा पाथेय है। सक्षिप्त स्वर-शब्दो मे गहन/अतिगहन विषय की सुस्पष्टता इसकी विशिष्टता है। सोये अलसाये व्यक्ति के सिर पर हथौडे की चोट करके फिर सहलाने की प्रक्रिया इस कृति मे छिपी है।

वे जानते थे कि साधक को चोट करने मे कोई भय या खतरा नही है, क्योकि मूल उद्देश्य जगाने का है । इसमे अपमान की पीडा नही है, क्योकि मान-अपमान से परे स्थितप्रज्ञता को पाने का उद्देश्य है।

सन् 1991 मे पूना चातुर्मास की ओर विहार करते समय लोनावला जैन मदिर मे रुके थे। दोपहर के समय मे स्वाध्याय के उद्देश्य से सामने खुली पडी आलमारी मे बिछी किताबे टटोलनी शुरू की। धूल झडकाकर कुछ पुस्तके देखी तो उसी मे ज्ञानसार मूल की एक पतली सी जीर्ण-शीर्ण पुस्तक हाथ लगी। उसका नाम देखते ही कुछ वर्ष पूर्व पूज्य गुरुदेव स्व आचार्य भगवत श्री जिनकान्तिसागरसूरीश्वरजी महाराज साहब की बाते स्मृति पटल पर उभर आई। उन्होने आगम-वाचना के दौरान एक बार ज्ञानसार का स्वाध्याय करने का सूचन किया था। पर उन दिनो पुस्तक प्राप्त न होने के कारण नही पढ सका और बाद मे अन्यान्य कार्यो व उपक्रमो की व्यस्तता मे बात भूल सी गया। आज इस पुस्तक को देखते ही सारी यादे जेहन मे ताजा हो गई।

वह कुल 40 पेज की पतली पुस्तक थी जिसमे कुल 32 अष्टक छपे थे। उसे पढना प्रारम्भ किया तो पढता ही चला गया। उद्बोधन ओर प्रेरणा

का चुटकियो भरा मीठा लहजा था। कभी मन अपने ही ऊपर उद्विग्नता, खिन्नता, उदासीनता, आकुलता से भरता तो कभी स्वरूप अनुभव की जागृति से गौरव और हर्ष के स्पर्श से रोमाचित हो उठता। भावो के इस उतार चढाव के माहौल मे भाव उठा कि क्यो न इसका हिन्दी पद्यानुवाद किया जाय। बस उन्ही भावो का यह परिणाम था कि कुछ ही दिनो मे यह पद्यानुवाद पूरा हो गया। इस अनुवाद मे मेरे परम आराध्य पूज्यपाद गुरुदेव श्री जिनकान्तिसागरसूरीश्वरजी महाराज का वरद आशीर्वाद था, साथ ही मेरे बन्धु, सयम साथी मुनि मुक्तिप्रभ की प्रेरणा प्रबल निमित्त बनी।

मेरे सयम यात्रा के उद्बोधक पूज्य मातुश्री महाराज श्री रतनमालाश्रीजी म. के उपकारो की वर्णना सभव नही है। बहिन साध्वी डॉ विद्युत्प्रभा का समय समय पर कभी स्नेहवश तो कभी बनावटी रोष वश साहित्यिक गतिविधियो की प्रेरणा देना, मेरे इन उपक्रमो का आधार बनता है।

साचोर चातुर्मास के दौरान महोपाध्याय विद्वद्वर्य श्री विनयसागरजी ने इस पाडुलिपि को देखा तो उन्होने प्राकृत भारती अकादमी की ओर से प्रकाशन की इच्छा अभिव्यक्त की।

इस ग्रन्थ मे जो कुछ है, ग्रन्थकार का है। उनकी वाणी और वैचारिक प्रवाह के प्रचार-प्रसार मे मै निमित्त बन रहा हूँ, यह मेरा सौभाग्य है।

दैनिक स्वाध्याय के लिये यह ग्रन्थ एक पूरी खुराक है। जो दिन भर साधक को आत्मबोध की उर्जा देता है और आत्म-गुणो से साक्षात्कार करवाता है।

मै यही कामना करूगा कि इस ग्रन्थ का स्वाध्याय कर साधकजन आत्म निमग्न बन, आत्म रस मे उन्मज्जन/निमज्जन करेगे और अध्यात्म अनुभव में डुबकी लगायेगे।

यदि पद्य रचना मे ग्रन्थकार के भावो के विरुद्ध किसी शब्द या भाव का गुफन हुआ हो तो क्षन्तव्य हूँ।

गणि मणिप्रभसागर

उपाध्याय यशोविजयजी
एक संक्षिप्त परिचय

मेहसाना से पाटण जाने वाली रेल लाइन पर दूसरा स्टेशन धीणोज आता है। यहा से चार मील पश्चिम दिशा मे चले तो रूपेण नदी के तट पर एक गाव आएगा। जिसका नाम है कनोड़ा या कणोदा अथवा कन्होडु। विक्रम सवत की सत्रहवीं शताब्दी के आठवे दशक की बात होगी, इस गाव मे एक जैन वणिक युगल रहता था। उनके दो पुत्र थे। परिवार बडा धार्मिक व आस्थावान था। कहते है कि माता का नियम था कि वह प्रतिदिन मदिर मे जाकर गुरु महाराज से भक्तामर स्तोत्र सुनती थी और तब लौट कर अन्न ग्रहण करती थी। माता के साथ दोनो बालक भी जाया करते थे। एक बार वर्षा काल मे अस्वस्थ हो जाने के कारण माता मदिर मे न जा सकी। उसे जब अन्न ग्रहण किए बिना तीन दिन बीत गए तो चौथे दिन लगभग पाच वर्ष के नन्हे बालक ने माता से पूछा कि वे भोजन क्यो नही कर रही। माता ने बताया कि वे भक्तामर स्तोत्र सुने बिना अन्न ग्रहण नहीं करती। इस पर बालक ने कहा, "आप कहे तो मै आपको भक्तामर स्तोत्र सुना दू।" माता के आश्चर्य का ठिकाना नही रहा। उन्होने पूछा- "तुझे यह कठिन स्तोत्र कैसे आता है।" बालक ने सहज उत्तर दिया, "आप मुझे अपने साथ गुरु महाराज के यहा ले जाया करती है, वही जब उन्होने आपको यह स्तोत्र सुनाया तभी मैने भी सुना था। मुझे याद हो गया।" और उस नन्हे से बालक ने माता को भक्तामर का पाठ सुना कर उन्हे भोजन करवाया। कहते हैं कि उस पाठ मे मात्र एक भूल थी।

इस तीव्र बुद्धि वाले मेधावी बालक का नाम जशवन्त था। ज्ञान का यही बीज कालक्रम से विकसित हो एक विशाल वृक्ष बन गया, जिसके फल आज भी अपने अपूर्व गुणो से मानवता को प्रभावित करते है। हम इस महान आत्मा को न्यायविशारद उपाध्याय यशोविजय जी के नाम से जानते है।

बालक जशवन्त के माता-पिता का नाम था सोभागदे और नारायण। उसके एक भाई भी था जिसका नाम था पदमसिंह। परिवार के धार्मिक वातावरण व सस्कारो के प्रभाव से बचपन से ही दोनो बालक धर्मानुरागी थे। सयोगवश सं 1687 मे प नयविजय जी महाराज (अकबर प्रतिबोधक आचार्य हीरविजयसूरि—उपाध्याय कल्याणविजयजी—प लाभविजयजी—पं नयविजयजी) का चातुर्मास पाटण के निकट कुणगेर ग्राम मे हुआ। वहां से विहार कर वे कनोड़ा गाव आये। उनकी वैराग्य रस से भरपूर वाणी का इन दोनो बालको पर गहरा प्रभाव पडा और उनका मन वैराग्य मे स्थिर हो गया। दोनो बालक माता-पिता से आज्ञा ले नयविजयजी के साथ हो लिये। पाटण पहुॅचने पर नयविजय जी ने स 1688 मे दोनो बालको को आचार्य हीरविजयसूरि के प्रपट्टधर आचार्य विजयदेवसूरि के पास दीक्षा दिलवाई। जशवन्त का नाम यशोविजय तथा पदमसिह का नाम पद्मविजय रखा गया।

गुरु नयविजय जी की निश्रा मे नव श्रमणो का शिक्षण आरभ हुआ। वे जैन शास्त्रो मे पारगत बने। यशोविजय ने अपनी तीव्र स्मरणशक्ति को और विकसित किया और अवधान क्रिया के अभ्यासी बने। स 1699 मे राजनगर मे सघ के समक्ष अष्ट अवधान का प्रदर्शन किया। युवा मुनि की विलक्षण प्रतिभा से वहा उपस्थित एक प्रतिष्ठित व्यापारी सेठ धनजी सूरा बहुत प्रभावित हुए। सेठजी ने प नयविजयजी से सादर अनुरोध किया कि ऐसे मेधावान युवा श्रमण को तो व्यापक ज्ञान आराधना मे झोक देना चाहिए, जिससे उसकी प्रतिभा परवान चढे और जैन शासन को हेमचन्द्राचार्य जैसा एक उद्भट विद्वान प्राप्त हो सके। इस काम के लिए उस समय के अध्ययन-केन्द्र काशी जा कर ही गहन अध्ययन किया जा सकता था। प नयविजय जी को बात जच गई। उनकी स्वीकृति मिलते ही सेठ धनजी सूरा ने काशी के किसी व्यापारी के नाम दो हजार चादी की दीनारो की हुडी लिख दी, जिससे अध्ययन काल मे आवश्यक व्यय के कारण व्यवधान न पडे।

नयविजय जी अपने शिष्यो सहित काशी पहुचे और वहा एक प्रसिद्ध भट्टाचार्य के पास अध्ययन के लिए यशोविजय जी को भेजा। कहते हैं कि यशोविजय जी बटुक का वेश धर कर इन विद्या गुरु के पास गये। यह बात यथार्थ के कितनी निकट है यह कहना कठिन है किन्तु इसमे कोई सदेह नही कि यशोविजय जी ने गुरु के पास पूर्ण विनय से शिक्षा ग्रहण की। अपने तीन वर्ष के काशी प्रवास मे उन्होने षड्दर्शन, प्राचीन न्याय, नव्य न्याय आदि गभीर व कठिन विषयो का तलस्पर्शी ज्ञान प्राप्त किया और साथ ही अपने गुरुजनो का स्नेह व आशीर्वाद भी। गुरु के आशीर्वाद से उन्होने काशी की विद्वत् सभा मे शास्त्रार्थ मे विजय प्राप्त कर न्यायविशारद का पद प्राप्त किया। ऐसी मान्यता है कि काशी मे ही उन्हे न्यायाचार्य की पदवी से भी सम्मानित किया गया था।

काशी से यशोविजय जी आगरा आए और वहा चार वर्ष तक रहे। इस काल मे उन्होने काशी मे प्राप्त किये ज्ञान को विकसित और परिपक्व करने के उद्देश्य से वहा के एक प्रकाण्ड न्यायशास्त्री के पास न्याय का विशेष अध्ययन व मनन किया। आगरा से जब वे अहमदाबाद पहुचे तब तक उनके पाडित्य की कीर्तिगाथा वहा पहुच चुकी थी। यशोविजय जी के वहा पहुचते ही औरगजेब के अधीन सूबेदार महोबत खा ने बडे बहुमान से इस परम विद्वान जैन श्रमण को अपने दरबार मे बुलाया। वहा यशोविजय जी ने अठारह अवधानों का प्रदर्शन किया। उनकी विद्वत्ता तथा शास्त्रज्ञान से चमत्कृत हो अहमदाबाद के श्रीसंघ ने उन्हें उपाध्याय पद से सम्मानित करने का निर्णय लिया। तत्कालीन पट्टधर आचार्य श्री विजयदेवसूरि के शिष्य श्री विजयप्रभसूरि ने स. 1718 मे उन्हे उपाध्याय पद से अलंकृत किया। उपाध्याय पद प्राप्त करने से पूर्व पारम्परिक रूप से उन्होने बीस स्थानक की ओलीजी का तप ग्रहण किया। इस अवसर पर प जयसोम आदि श्रमणो ने बहुमान से उनकी सेवा की।

यशोविजय जी ने अपना समस्त जीवन विविध शास्त्रों के अध्ययन चिन्तन और सृजन मे ही झोंक दिया। सृजन के इस भागीरथ श्रम मे वे

इतने एकाग्र हो गए कि पारपरिक तथा औपचारिक धर्म कार्यों के लिए उन्हे समय ही नही मिला। उनके द्वारा रचा सम्पूर्ण साहित्य तो उपलब्ध नही है फिर भी जितना कुछ उपलब्ध है और जितने के सबध मे इतस्तत उल्लेख मिलता है, उससे उनकी बहुमुखी प्रतिभा, तलस्पर्शी ज्ञान और गहन मौलिक चिन्तन का दिग्दर्शन होता है। उनकी रचनाए सस्कृत, प्राकृत, गुजराती और हिन्दी-मारवाडी चारो भाषाओं मे है। ये रचनाए गद्य, पद्य तथा मिश्रित तीनो शैलियो मे है।

इस महान मनीषी का रचना कार्य इनके अध्ययन कार्य के साथ-साथ ही चलता रहा और ज्ञान तथा अनुभव के साथ-साथ परिपक्व होता चला गया। यशोविजय जी ने अनेक विषयो पर आधिकारिक रूप से कलम चलाई। उनकी साहित्य साधना मे मौलिक कृतिया भी है तो पूर्व-धुरधरो की रचनाओ पर बालावबोध व टीकाए भी है। उनकी व्यापक दृष्टि जैन दर्शन की चर्चा तक ही सीमित नही रही, अन्य दर्शनो की चर्चा भी उन्होने उतने ही आधिकारिक रूप से की है। उनकी रचनाओ का परिमाण लाखो श्लोक माना जाता है। मात्र न्याय विषय पर दो लाख श्लोक लिखे यह बात उनके द्वारा एक श्रावक शा हसराज को लिखे एक पत्र मे सूचित की गई थी।

यशोविजय जी ने अपने अध्ययन काल मे पारम्परिक अध्ययन के साथ उस समय अन्य परम्पराओ मे प्रचलित नवीन न्याय शास्त्र का जो गहन अध्ययन किया था उसके फलस्वरूप उन्होने जैन दर्शन का तर्क और न्याय पर आधारित जितना प्रभावी विश्लेषण व प्रतिपादन किया उतना न तो उनके पूर्ववर्ती जैन विद्वानो ने किया और न ही परवर्ती कोई विद्वान कर पाया।

उन्होंने अनेकान्त-व्यवस्था नामक ग्रन्थ की रचना की और अनेकान्तवाद को परिष्कृत कर नव्यन्याय की शैली मे प्रस्तुत किया। जैन तर्क-भाषा और ज्ञानबिन्दु नामक ग्रन्थो से ज्ञान तथा प्रमाण विषयक परिभाषाओ की पुनर्स्थापना की। नयप्रदीप, नयरहस्य और नयोपदेश (नयामृततरगिणी नामक स्वोपज्ञ टीका सहित) के द्वारा नयवाद को एक नई दिशा दी। न्याय-खण्ड-खाद्य और न्यायालोक की रचना कर अन्य दर्शनो के

सिद्धान्तो का खण्डन किया। अन्य अनेक ग्रन्थ उन्होंने अपनी इस तार्किक शैली मे रचे जिससे जैन दार्शनिक परम्परा पुन जागृत हो उठी। ऐसी मौलिक रचनाओ के साथ-साथ उन्होने अनेकान्तवाद के श्रेष्ठ और जटिल प्राचीन ग्रन्थ अष्ट सहस्त्री का विवरण लिखा तथा हरिभद्रसूरि के शास्त्रवार्ता-समुच्चय की स्याद्वादकल्पलतता नाम की टीका की भी रचना की।

उनके इन सभी ग्रन्थो को देखने से ऐसा प्रतीत होता है कि यशोविजय जी एक शुष्क तार्किक, बुद्धिवादी, अभिमानी तथा अपनी परम्परा के एकान्त पुष्ट पोषक विद्वान रहे होगे। उनके तथा उनकी परम्परा के विरोधी लोगो ने दबे या छुपे शब्दो मे यह मत प्रकट भी किया और आज भी करते रहते हैं। उनकी अपनी परम्परा वाले ऐसी निराधार बातो के खण्डन मे जुटे रह कर वितण्डावाद तथा वैमनस्य को प्रोत्साहन देते है। पर ये दोनों चेष्टाए ही हास्यास्पद लगती हैं। यशोविजय जी जिस स्तर के साधक थे वह स्तर किसी भी पारपरिक, साप्रदायिक अथवा एकान्तिक दृष्टिकोण से कही ऊचा होता है। उस स्तर के मनीषी जब खण्डन करते हैं तो वह किसी वाद का नही होता वह होता है मिथ्या का। उसी प्रकार वे पुष्टि करते है सत्य की न कि किसी मत विशेष की।

उनकी यह विशुद्ध सत्यान्वेषी वृत्ति तथा समन्वयात्मक दृष्टिकोण परिलक्षित होता है उनकी और अध्यात्म योगी आनन्दघन जी, जो खरतरगच्छ परम्परा के थे, के साक्षात की घटना मे। दोनो महान आत्माए समकालीन थी। श्रीमद् आयु मे वरिष्ठ थे। एक प्रचण्ड तेजस्वी विद्वान और दूसरा गहन आत्मानुभवी आध्यात्म पथ का साधक। दोनो को एक दूसरे की उपस्थिति का भान भौतिक तथा पराभौतिक स्तरो पर होना तथा साक्षात की ललक का जन्म लेना स्वाभाविक था। साक्षात हुआ तो दोनो की आतरिक ऊर्जाओ का समागम हुआ। दोनो ने एक दूसरे को जो कुछ दिया-लिया वह हमारी समझ से परे है। फिर विवाद को स्थान ही कहा है। पर, परोक्ष अनुभव को शब्दो मे बाध अपने आग्रहो को उस पर थोपने का कार्य हम करते ही रहते है। उस घटना का न तो कोई साक्षी है और न ही

कोई अन्य तथ्य मिलते है। इस कारण भी अनेक किंवदतिया प्रचलित है। यथार्थ जो भी रहा हो पर यह बात निश्चित है कि दोनो के मन मे एक दूसरे के प्रति आदर और सहज आत्मीयता की भावना जाग उठी थी। इसकी झलक श्रीमद् से साक्षात की घटना से प्रेरित हो यशोविजय जी द्वारा रचित अष्ट पदियो में मिलती है। एक उदाहरण

आनंदघन के संग सुजस ही मिले जब,
तब आनंद सम भयो सुजस।
पारस संग लोहा जो फरसत,
कंचन होत ही ता के कस।

अन्य परम्परा के सत के प्रति ये उद्गार यशोविजय जी के विनय की झलक देते हैं। विद्या ने उन्हे विनय दिया था, न कि अहकार।

वे शुष्क तार्किक थे यह बात आधारहीन है। वे यदि शुष्क तार्किक पण्डित मात्र होते तो उनकी कृतियो में केवल पाडित्य ही दिखाई देता। वैसा नही है। उनकी कृतियो मे दिखाई देता है एक सवेदन शील कवि, आत्मसाधना को समर्पित, जन-जन मे मुक्ति के मार्ग के प्रति प्रेरणा फूकने मे प्रयत्नरत एक सहृदय उपदेशक। जैन दर्शन मे रही आध्यामिकता का साररूप उनका ज्ञानसार नामक ग्रन्थ उनके इन गुणो का उत्कृष्ट उदाहरण हैं। स्वनामधन्य जैन विद्वान प दलसुख भाई मालवणिया के शब्दो मे "यशोविजय ने सिर्फ दर्शन के विषय मे ही लिखा यह बात नहीं है। आगमिक अनेक गहन विषयो की सूक्ष्म चर्चा, आध्यात्मिक शास्त्र की चर्चा, योगशास्त्र, अलकार और आचार शास्त्र की चर्चा करने वाले भी अनेक पाण्डित्य पूर्ण ग्रन्थो की रचना करके जैन वाङ्मय को उन्नत भूमिका के ऊपर स्थापित करके अपने सर्व शास्त्र-वैशारद्य का प्रदर्शन किया है।"

यशोविजय जी के सृजन और पाडित्य की गहराई और विशालता के विषय में प्रसिद्ध जैन चिन्तक प सुखलाल जी का कहना है, "शैली की दृष्टि से उनकी कृतिया खडनात्मक भी है, प्रतिपादनात्मक भी है और समन्वयात्मक भी। जब वे खण्डन करते है तब पूरी गहराई तक पहुचते है।

प्रतिपादन उनका सूक्ष्म और विशद है। वे जब योगशास्त्र या गीता आदि के तत्त्वो का जैन मन्तव्य के साथ समन्वय करते है तब उनके गम्भीर चिन्तन का और आध्यात्मिक भाव का पता चलता है। उनकी अनेक कृतिया किसी अन्य ग्रन्थ की व्याख्या न हो कर मूल, टीका या दोनो रूप से स्वतन्त्र ही है। जब कि अनेक कृतिया प्रसिद्ध पूर्वाचार्यो के ग्रन्थो की व्याख्या रूप हैं। उपाध्याय जी थे पक्के जैन और श्वेताम्बर। फिर भी विद्याविषयक उनकी दृष्टि इतनी विशाल थी कि वह अपने सम्प्रदाय मात्र मे समा न सकी। अतएव उन्होने पातजल योगसूत्र के ऊपर भी लिखा और अपनी तीव्र समालोचना की। लक्ष्य दिगम्बर परम्परा के सूक्ष्मप्रज्ञ तार्किक-प्रवर विद्यानन्द के कठिनतर अष्टसहस्त्री नामक ग्रन्थ के ऊपर कठिनतम व्याख्या भी लिखी।"

यशोविजय जी की अपनी लेखनी से यह जानकारी मिलती है कि "ऐ" कार नामक बीजाक्षर की साधना के फलस्वरूप सरस्वती देवी ने प्रसन्न होकर गगा तट पर उन्हे दर्शन दिये और अपना वरदहस्त उनके मस्तक पर रखा। इसी कारण उनकी अधिकतर रचनाओ के शीर्ष पर ऐंद्र शब्द मिलता है। सरस्वती के इस उपासक ने वाग्देवी के वारदान को अपनी अथक तपस्या से सार्थक किया। इस शारदापुत्र ने विद्वद् समुदाय को इतना प्रभावित किया कि उसे कूर्चाल शारद (दाढी-मूछ वाली सरस्वती) जैसे अनोखे विरुद से विभूषित करना पड़ा।

वि स 1743 मे बडौदा के निकटवर्ती डभोई ग्राम मे सरस्वती का यह अनन्य उपासक अनशन पूर्वक समाधि मरण को प्राप्त हुआ। उनके समकालीन मुनि कातिविजय जी के शब्दो मे "सवेगी शिरोमणि, ज्ञानरत्नसमुद्र तथा कुमति तिमिर उच्छेदक बालारुण दिनकर गुरु अदृश्य हो गया।"

यशोविजय जी जैन शासन के उन परम प्रभावक महापुरुषो मे अन्तिम थे जिनके द्वारा कथित अथवा लिखित शब्द प्रमाण स्वरूप माना जाता है। ये युग प्रवर्तक महापुरुष थे इस मे कोई सदेह नही।

वर्तमान मे प्रचलित जैन दार्शनिक परम्परा को उसके विकास क्रम के अनुसार चार युगो मे बाटा जा सकता है। भगवान महावीर से आरभ हुई यह परम्परा आचार्य भद्रबाहु के समय मे सयोजित, सगठित व व्यवस्थित हुई। लगभग एक हजार वर्ष तक आगम और उन पर आधारित साहित्य का बोलवाला रहा, अत यह आगम युग कहा जाता है। पाचवी-छठी शताब्दी मे जैन परम्परा मे भी अन्य परम्पराओ की भाति दर्शन को तर्क के बल पर सुसगत करने का प्रयास आरभ हुआ। सिद्धसेन दिवाकर तथा समन्तभद्र से आरभ हुए इस युग को अनेकान्त स्थापना युग कहा जाता है।

आठवीं-नवी शताब्दी तक विभिन्न दर्शनो के अनुयाइयो मे सैद्धान्तिक सघर्ष चलते रहे और तर्क के आधार पर अपने-अपने मत की स्थापना की चेष्टा होती रही। इस काल की उपलब्धियो के आधार पर प्रमाण शास्त्र की स्थापना हुई। इस युग का आरभ किया हरिभद्रसूरि तथा अकलक ने। इसे प्रमाण शास्त्र स्थापना युग कहा जाता है।

इस परपरा मे अनेक मूर्धन्य विद्वान हुए जिनकी श्रृखला की अतिम कडी थे वादी देवसूरि। बारहवी शताब्दी के इस महापुरुष के बाद जैन दार्शनिक क्षेत्र मे एक अधकार सा छा गया। अन्य दर्शनो में विकास क्रम जारी रहा और न्याय के क्षेत्र मे नव्य न्याय शैली का उद्भव और विकास हुआ। जैन परम्परा इस विकास क्रम से लगभग पाच सौ वर्ष के दीर्घ काल तक अछूती ही रही। वह वादी देवसूरि के कार्यो को ही चरम उपलब्धि मान कूपमण्डूक बन गई।

यशोविजय जी ही वे महापुरुष थे जिन्होने इस रूढान्धता को तोड़ा और जैन दर्शन के नव्य न्याय युग की स्थापना की। उन्हे दिनकर की उपाधि देना उचित ही है क्योकि अकेले यशोविजय जी द्वारा रचे साहित्य से ही उस युग का दार्शनिक साहित्य समृद्ध हुआ है। अन्य विद्वानो ने कतिपय छोटी-मोटी और गिनती की दार्शनिक पुस्तको की रचना अवश्य की है। पर, यशोविजय-साहित्य को सागर माने तो वे सभी बूद सम है। जैन

परम्परा मे इस युग को नव्यन्याय युग कहे अथवा यशोविजय युग कोई अन्तर नही पडता।

भारतीय ज्ञान क्षितिज पर कतिपय जैन मनीषी प्रचण्ड सूर्य की भांति उभरे है और अपनी व्यापक आभा से विशाल क्षेत्र को दीर्घकाल तक प्रभासित किया है। विडम्बना यह है कि परम्परा ने औपचारिक कर्मकाण्ड और विधि-विधान के कुहासे से ढककर ज्ञान के प्रकाश के ऐसे जाज्वल्यमान और शाश्वत स्रोतो को धूमकेतु मात्र बना कर रख दिया। उपाध्याय यशोविजय जी एक ऐसे ही सूर्य थे। प सुखलाल जी के इस मतव्य मे कोई अतिशयोक्ति नही है कि इस क्रान्तिकारी महापुरुष का स्थान जैन परम्परा मे ठीक वही है जो वैदिक परम्परा मे जगद्गुरु शकराचार्य का है।

सुरेन्द्र बोथरा

जयपुर
नवम्बर—1995

आधार——

1. गुर्जर साहित्य सग्रह-प्रथम भाग (1936)
2. जैन साहित्य नो सक्षिप्त इतिहास-मोहनलाल दलीचद देशाई (1933)
3. जैन साहित्य सशोधन मण्डल पत्रिका न 21 (1949)
4. यशोविजय स्मृति ग्रथ-स मुनि श्री यशोविजयजी (1957)

पूर्णता-1

ऐन्द्रश्रीसुखमग्नेन, लीलालग्नमिवाखिलम्।
सच्चिदानन्दपूर्णेन पूर्णं जगदवेक्ष्यते॥ १ ॥

बन ऐन्द्र-सुख में मग्न देखे इन्द्र जग को हर्ष में।
सच्चिदानन्दी देखते त्यों ज्ञान के उत्कर्ष में॥
हर चेतना में ज्ञान दर्शन् चरण की संपूर्णता।
ये वचन है उनके जिन्होंने प्राप्त की श्रुत पूर्णता॥ १ ॥

जिस प्रकार लक्ष्मी सुख में मग्न बना इन्द्र समस्त जगत को सुख में मग्न बना देख़ता है। उसी प्रकार सम्यक् ज्ञान, दर्शन और चारित्र से पूर्ण ऐसा सच्चिदानन्द योगी जगत को दर्शन, ज्ञान चरित्र से पूर्ण देखता है।

TOTALITY

God Indra (the god of gods) preceives the words to be content with earthly pleasures simply because he himself is contented in the company of his spouse Laxmi (the goddes of wealth), likewise a "Yogi" absorbed in celestial bliss due to right knowledge, right perception and right conduct, perceives the world to be replete with knowledge, perception and good conduct

पूर्णता या परोपाधेः, सा याचितकमण्डनम्।
या तु स्वाभाविकी सैव, जात्यरत्नविभानिभा ॥ २ ॥

बस पुद्गलों की पूर्णता तो क्षणिक है स्थिर है नहीं।
ज्यों मांग लाये रत्न भूषण पास रह सकते नहीं ॥
वर ज्ञान दर्शन चरण की सम्पूर्णता ही सहज है।
ज्यों रत्न मणि की कांति शोभे ज्यों सुशोभे जलज है ॥ २ ॥

पर-वस्तुओ से बनी जो पूर्णता है वह मांग कर लाये गये आभूषणो की तरह अनित्य है। जो स्वभाव जन्य पूर्णता है, वह उत्तम रत्नों की दिव्य कांति जैसी है।

In this ephemeral world, the enverlasting glow of 'totality' obtained through right knowledge, right perception and right conduct is like permanent luster of precious stones and quite unlike the temporary glitter of borrowed ornaments

अवास्तवी विकल्पैः स्यात्-पूर्णताऽब्धेरिवोर्मिभिः ।
पूर्णानन्दस्तु भगवान्, स्तिमितोदधिसन्निभः ॥ ३ ॥

होती तरंगों से लहर से पूर्णता जो सिन्धु में।
सागर समा सकता नहीं है मात्र इक जल बिन्दु में ॥
नाना विकल्पों से भरी जो पूर्णता वो सांच ना।
अविकल्प पूर्णानंदी भगवन पूर्ण हीरे कांच ना ॥ ३ ॥

समुद्री, तरंगो से जो ज्वार रूप पूर्णता होती है, वह अवास्तविकी अर्थात् झूठी है। उसी प्रकार आत्मा मे भी विकल्प जन्य जो पूर्णता का आभास होता है, वह अस्थिर है। शुद्ध स्वभावयुक्त पूर्णानंद मय भगवान् अर्थात् शुद्ध आत्मा तो स्थिर सम्रुद के समान शान्त होता है।

The onean obtains its totality by the accumulation of tiny waves which in turn are so many drops of water and yet the ocean is not inherent in that drop The truth of life appears to be the various alternatives confronted in it and yet the diamond like sparkle of true totality is achieved only in an existence without resorting to alternatives and compromises, for the sparkle achieved through compromises is as false as that seen in a piece of glass

जागर्ति ज्ञानदृष्टिश्चेत्, तृष्णाकृष्णाहिजाङ्गुली।
पूर्णानन्दस्य तत्किं स्याद्, दैन्यवृश्चिकवेदना॥ ४॥

तृष्णा भयंकर-अति भयंकर कृष्ण नाग समान है।
उसके जहर के नाश में वर ज्ञान मंत्र समान है॥
तत्त्व ज्ञान दृष्टि खुल गई है पूर्ण आनंद चेतना।
नहीं हो सकेगी दीनता-संबंधी वृश्चिक वेदना॥ ४॥

तृष्णा रूप काले नाग के जहर का नाश करने वाले गारुड़ी के मंत्र समान तत्त्व ज्ञान रूपी दृष्टि जिसकी जागृत है, उस पूर्णता के आनंद का उपभोग करने वाले ज्ञानी को दीनता रूप बिच्छु के डंक की वेदना क्यो हो सकती है ?

Greed is like a terrible black snake Knowledge acts like the magic chant that can kill its poison A man who has acquired bliss and totality through right knowledge can never be affected by the pain generated from the sting of poverty which is like that of a scorpion

पूर्यन्ते येन कृपणा-स्तदुपेक्षैव पूर्णता।
पूर्णानन्दसुधास्निग्धा, दृष्टिरेषा मनीषिणाम् ॥ ५ ॥

धन-धान्य में लोभी पुरुष निज पूर्णता है मानता।
उन साधनों की जो उपेक्षा करे वह है पूर्णता॥
आनंद अमृत पूर्ण पाकर स्निग्ध दृष्टि हो गई।
वे तत्त्व दृष्टा पूर्ण ज्ञानी दोष दृष्टि खो गई॥ ५ ॥

जिस धन धान्य को पाकर कृपण लोग पूर्णता का अनुभव करते हैं, उन्हीं बाह्य पदार्थों की उपेक्षा करके ज्ञानी पुरुष पूर्णता का अनुभव करते हैं।

ऐसी पूर्णता के आनंद रूप अमृत से स्निग्ध दृष्टि तत्त्व ज्ञानियो/मनीषियो की होती है।

An avaricious man lost in his wealth and luxuries considers himself complete whereas the wise men who ignore these amenities acquire knowledge and a discerning eye which helps them shed illusion

अपूर्णः पूर्णतामेति, पूर्यमाणस्तु हीयते।
पूर्णानन्दस्वभावोऽयं, जगदद्भुतदायकः ॥ ६ ॥

आश्चर्य है जो पूर्ण है पर-द्रव्यसत्ता स्वार्थ से।
होता वही है अपूर्ण मानव ज्ञान गुण परमार्थ से ॥
पर द्रव्य से जो अपूर्ण होता · पूर्ण हो सकता वही।
ज्ञानादि गुण की पूर्णता से आत्म अनुभवता लही ॥ ६ ॥

जो धन धान्य आदि बाह्य भावो से अपूर्ण है, वही वास्तव मे पूर्ण है। और जो बाह्य पदार्थो से अपने को पूर्ण करता रहता है, वह वास्तव मे अपूर्ण है। पूर्णता में आनंद का अनुभव करने वाली आत्मा का स्वभाव जगत को आश्चर्य चकित कर देने वाला है।

Totality can never be achieved by an abundance of mundane possessions It is the apathy for such material things that leads to the experience of 'totality' This inherent nature of soul that enjoys such detached totality seems astounding to the world around

परस्वत्वकृतोन्माथा, भूनाथा न्यूनतेक्षिणः।
स्वस्वत्वसुखपूर्णस्य, न्यूनता न हरेरपि॥ ७॥

पर में जिन्होंने स्वत्व माना वे नृपादिक व्यग्र है।
वे मानते मन में कि हम तो अपूर्ण है न समग्र है॥
आत्मिक सुखों से पूर्ण मुनि इन्द्रादि से भी समृद्ध है।
परिपूर्णता को लब्ध ज्ञानी सिद्धि-आकर सिद्ध है॥ ७॥

पर पदार्थों में स्वत्व की कल्पना से उन्मत्त बनते राजा भी सदैव अपनी न्यूनता को ही देखते हैं। जबकि स्व अर्थात् आत्मा को ही स्व मानने के पूर्ण सुख का अनुभव करने वाली आत्मा को इन्द्र से भी कुछ भी न्यूनता का आभास नही होता।

Those kings and all who consider material belongings their own are restless beings with an illusion of being complete In fact a person with inner bliss is wealthier than Indra. Such wise men are truly complete.

कृष्णपक्षे परिक्षीणे, शुक्ले च समुदञ्चति।
द्योतन्ते सकलाध्यक्षा, पूर्णानन्दविधोः कला ॥ ८ ॥

क्षय कृष्ण का हो उदय हो सुद पक्ष का नभ में यदा।
आतम स्वरूपी शशि कलाएँ पूर्ण खिलती हैं तदा ॥
अज्ञान माया मोह रूपी अंधकार विनष्ट हो।
निज ज्ञान की हो पूर्णता पर्याय चेतन स्पष्ट हो ॥ ८ ॥

कृष्ण पक्ष की समाप्ति पर शुक्ल पक्ष का उदय होता है, तब चन्द्रमा की कलाऐं प्रकाशित होती है। उसी प्रकार आत्मा का कृष्ण पक्ष अर्थात् अज्ञान, माया, आदि का नाश होने पर पूर्ण आनंद रूप कलाऐं प्रकट होती हैं।

When the dark half of a month is over, the bright half begins with the moon gradually growing Similarly when the illusion of ignorance recedes, the soul emerges into the bright and blissful state of totality

***

मग्नता-2

प्रत्याहृत्येन्द्रियव्यूहं, समाधाय मनो निजम्।
दधच्चिन्मात्रविश्रान्ति, मग्न इत्यभिधीयते॥ १॥

मन आत्म में एकाग्र करना मग्नता का अर्थ है।
जड़ इन्द्रियों को विमुख विषयों से कर वो समर्थ है॥
हो चेतना निज में मगन लगनी लगे ऐसी सदा।
मस्ती हो हर पल आत्म में हो रमणता शिव सर्वदा॥ १॥

विषयो की ओर आकृष्ट बनती इन्द्रिय्रो को उनसे विमुख कर तथा अपने मन को स्थिर कर चैतन्य मात्र में विश्राम प्राप्त आत्मा मग्न कहलाता है।

CONCENTRATION

One who has succeeded in controling his baser instincts and who through introspection has focused his mind on his soul or inner self, he alone finds the bliss of trance like concentration

यस्य ज्ञानसुधासिन्धौ, परब्रह्मणि मग्नता।
विषयान्तरसञ्चार—स्तस्य हालाहलोपमः ॥ २ ॥

सद्ज्ञान अमृत सिंधु सम पर–ब्रह्म में जो लीन है।
परमात्म में हो मग्नता तो बजे शिव सुख बीन है॥
रस रूप आदिक अन्य विषयों में प्रवृत्ति ज़हर सम।
जो ज्ञान में बनता मगन वो अन्य में जाता न रम॥ २ ॥

जिसे ज्ञान स्वरूप अमृत सागर ऐसे पर ब्रह्म अर्थात् परमात्मा में लीनता होती है, उसे अन्य विषयों में हो रही प्रवृत्ति जहर के समान अनिष्ट लगती है।

The flute of happiness plays when one immersed in the manna of knowledge concentrates on 'Brahma', The Omnipresent and omniscient. Life's other attraction are like poison for such a man

स्वभावसुखमग्नस्य, जगत्तत्त्वावलोकिनः।
कर्तृत्वं नान्यभावानां, साक्षित्वमवशिष्यते॥ ३॥

जाना जगत के सर्व तत्त्वों को बने निज में मगन।
निज सहज आनंद में मगन है एक चेतन की लगन॥
वे योगिराज विमुक्त बन जाते हैं कर्त्ता भाव से।
सब जानते सब देखते हैं मात्र द्रष्टा भाव से॥ ३॥

सहज स्वभाव के आनंद में मग्न तथा जगत् के स्वरूप का यथार्थ द्रष्टा आत्मा को अन्य पदार्थों का कर्त्ता भाव नहीं रहता, मात्र साक्षी-भाव रहता है।

The all knowing 'Yogi' completely absorbed in inner bliss is devoid of subjectivity He observes the world with the detachment of the uninolved onlooker

परब्रह्मणि मग्नस्य, श्लथा पौद्गलिकी कथा।
क्वामी चामीकरोन्मादाः, स्फारा दारादरा क्व च ॥ ४ ॥

परमात्म रूप स्वरूप में हो मग्नता चेतन जगे।
पुद्गल कथा उनको सदा बस जहर सम खारी लगे ॥
जो मूढ़ चेतन को करे मदमस्त नारी वित्त भी।
ना मगन को धन नारि में मद और आदर हो कभी ॥ ४ ॥

परब्रह्म अर्थात् परमात्म स्वरूप में लीन आत्मा को पुद्गल की बाते भी नीरस लगती हैं। तो उसे सुवर्ण का अभिमान और स्त्रियो मे (भोग में) आदर कहाँ से होगा ?

One who is in unison with the pure-self (omniscient) finds the material world insipid. So, naturally he is neither intested in wealth nor in women.

तेजोलेश्याविवृद्धिर्या, साधोः पर्यायवृद्धितः।
भाषिता भगवत्यादौ, सेत्थम्भूतस्य युज्यते॥ ५॥

चारित्र वय भी वृद्धि से मन शान्ति की अभिवृद्धि हो।
भगवती आगम का कथन यह घटे जब मन शुद्धि हो॥
जिस साधु का श्रुत मग्नता में बीतता प्रत्येक पल।
उनके हृदय में तेजो लेश्या प्रकट होती है विमल॥ ५॥

भगवती आदि सूत्रो मे बताया गया है साधु को पर्याय वृद्धि से तेजोलेश्या वृद्धि होती है, वह कथन ऐसे अध्यात्म दशा में मग्न साधुओं में ही घटित होता है।

It is elucidated in the 'Bhagwati Sutra' that a Sadhu who concentrates on the 'Shrutas' (Canons) incessantly is strong in character, experiences peace, and in his heart glows the flame of spirituality

ज्ञानमग्नस्य यच्छर्म, तद्वक्तुं नैव शक्यते।
नोपमेयं प्रियाश्लेषै-र्नापि तच्चन्दनद्रवैः ॥ ६ ॥

जो ज्ञान में है पूर्ण डूबे सुख कथन ना कर सके।
सुर गुरु विद्या देवता भी ज्ञान गुण करते थके॥
चंदन विलेपन प्रियालिंगन का भी सुख तत्सम नहीं।
उपमा न जग में एक भी श्रुत समक्ष घटती है नहीं॥ ६ ॥

ज्ञान में मग्न आत्माओ के आनंद का वर्णन कदापि शक्य नही है।

स्त्री सुख अथवा चन्दन विलेपन से प्राप्त सुख के साथ भी उस सुख की तुलना संभव नही है।

Even the gods of all knowledge agree that it is nigh impossible to describe the bliss experienced by those totally immersed in the depths of knowledge. It is not even comparable to the bliss experienced on anointing sandalwood paste or by the embrace of the beloved

शमशैत्यपुषो यस्य, विप्रुषोऽपि महाकथा।
किं स्तुमो ज्ञानपीयूषे, तत्र सर्वांग मग्नता॥ ७॥

श्रुत अमीरस के बिन्दु की भी होती है इक महाकथा।
शम रूप शीतलता की पुष्टि करे प्रतिपल सर्वथा॥
उस ज्ञान अमृत मग्नता की वर्णना मैं क्या करूँ।
श्रुत में सदा बन मगन तन मन का सकलतम भ्रम हरूँ॥ ७॥

उपशम की शीतलता को पुष्ट करने वाली ज्ञान-मग्नता के आनंद के एक बिंदुमात्र की भी कथा महान् है। तो उस ज्ञानानंद रूप अमृत से सम्पूर्ण मग्न आत्माओं के आनंद की क्या प्रशंसा करूँ?

Great is the story of even a drop of the bliss of immersion in the knowledge that enhances the serenity of pacification How does one find words of praise for the bliss enjoyed by the souls that are completely drowned in the nectar of the ecstasy of knowledge

यस्य दृष्टिः कृपावृष्टि-र्गिरः शमसुधाकिरः।
तस्मै नमः शुभंज्ञान-ध्यानमग्नाय योगिने॥ ८॥

दृष्टि जिन्हों की करे करुणा वृष्टि शांति अपार है।
वाणी करे छिड़काव अमृत धैर्य पारावार है॥
शुभ ज्ञान में जो मग्न है उन योगियों को वंदना।
नित भावभीनी वंदना से हुवे कर्म निकंदना॥ ८॥

जिनकी दृष्टि करुणा की वृष्टि करती है। जिनकी वाणी उपशम रूप अमृत का छिड़काव करती है। उन सम्यक् ज्ञान तथा ध्यान मे मग्न योगियो को नमस्कार हों।

Those with empathy in their vision & those who shower peace, their words are like sprinkled nectar of pacification Hymns should be sung in praise of such yogis who concentrate on pure knowledge, for a soulful rendering of such hymns can rid one of ones 'karmas'

***

स्थिरता-3

वत्स! किं चञ्चलस्वान्तो, भ्रान्त्वा भ्रान्त्वा विषीदसि।
निधिं स्वसन्निधावेव, स्थिरता दर्शयिष्यति॥ १ ॥

हे वत्स ! क्यों तूं चित्त चंचल बन जगत में रखडता।
हो प्राप्त तो नहिं तृप्ति हो नहीं प्राप्त हो तो खिन्नता॥
तेरा खजाना पास तेरे आत्म में तुम स्थिर बनो।
स्थिरता अगर हो प्राप्त तो शिवपति बनो हे भविजनो॥ १ ॥

हे वत्स ! मन को चंचल बनाकर तूं भटक भटक कर क्यो दुःखी होता है ? तेरा खजाना तेरे पास ही है ! तेरी स्थिरता ही उस निधान को दिखायेगी !

STABILITY

Child why is there such restlessness in your heart? When you achieve you are dissatisfied and when you do not you are dejected.The treasures you seek are in your heart—be stable, your stability will make you Shiva the Supreme.

ज्ञानदुग्धं विनश्येत, लोभविक्षोभकूर्चकैः।
अम्लद्रव्यादिवाऽस्थैर्या-दिति मत्वा स्थिरो भव ॥ २ ॥

सद्ज्ञान रूपी पय में अस्थिरता का खट्टापन पडे।
अतिलोभ रूप विकार से विकृत बने सब पय सडे॥
फट जाय क्षण में दुग्ध सारा सोच लो स्थरि बन सघन।
त्यागो सदा मन मैल अस्थिरता करो निज स्थिर सु मन ॥ २ ॥

खट्टे पदार्थो के स्वर्श से दूध बिगड़ जाता है, उसी प्रकार लोभ के विकार रूप कूर्चको से ज्ञन रूप दूध बिगड़ जाता है, ऐसा समझकर स्थिर बन !

As even a drop of a sour substance can spoil milk, so avarice spoils knowledge Therefore stop wavering and be resolute.

अस्थिरे हृदये चित्रा, वाड्.नेत्राऽऽकारगोपना।
पुंश्चल्या इव कल्याण-कारिणी न प्रकीर्तिता॥ ३ ॥

कोई स्त्री असती वासना मन में छिपा किरिया करे।
वह नारि वाणी हावभावों का भले गोपन करे॥
ज्यों वह नहीं कल्याणकारी हृदय अस्थिर कुछ करे।
कल्याण हेतु नहीं हुवे, स्थिरता ही आनंद मन भरे॥ ३ ॥

कुलटा स्त्री की तरह चित्त चंचल हो, फिर भी वाणी व नेत्रो के बाह्य आकार से उसे छिपाना, कल्याणकारी नही कहा है। (कल्याण तो इसी मे है कि मन को ही स्थिर करें)

As a courtesan's act of feigning devotion and her concealment of lust for another person cannot be beneficial, so a wavering mind in an apparently still body can never be blissful

अन्तर्गतं महाशल्य—मस्थैर्यं यदि नोद्धृतम् ॥
क्रियौषधस्य को दोष-स्तदा गुणमयच्छतः ॥ ४ ॥

कुछ धर्म किरिया कृत्य की गुण रूप सिद्धि ना मिले।
तो दोष ना है धर्म का क्योंकि हृदय उसका हिले ॥
अंतर पड़ा है चित्त में अस्थिर स्वरूपी शल्य तो।
हो लाभ किरिया का तभी जब चित्त हो निःशल्य तो ॥ ४ ॥

यदि अस्थिरता रूप अंदर के महाशल्य को दूर न किया जाय तो क्रिया रूप औषधि लाभ नही करती। तो इसमे क्रिया का कोई दोष नही है।

If some religious rituals are not rewarded suitably then the religion should not be blamed The fault lies in th restless heart which does not pursue the rituals as prescribed in the scriptures. Following the rituals could be fruitful if the heart and mind are tranquil

स्थिरता वाङ्.मनः कायै-र्येषामङ्गाङ्गितां गता।
योगिनः समशीलास्ते, ग्रामेऽरण्ये दिवा निशि॥ ५ ॥

मन वचन तन में एकता ज्यों गंध चंदन में बसे।
चंदन जहाँ सुरभि वहाँ दोनों रहे मिल एक से॥
स्थिर ऐसे योगी रहे सदा समभाव में रमते रहे।
हो नगर चाहे ग्राम हो दिन रात सम-गंगा बहे॥ ५ ॥

जिनके मन, वचन व काया द्वारा स्थिरता एकमेक हो गई है, ऐसे योगी गॉव हो या जंगल, रात्रि हो या दिन, समभाव मे ही रहते हैं।

The yogis who attain stability of mind, speech and body, always dwell in in equanimity irrespective of whether they are in a Village or a jungle, during the day or night

स्थैर्यरत्नप्रदीपश्चे-द्दीप्रः संकल्पदीपजैः ।
तद्विकल्पैरलं धूमै-रलं धूमैस्तथाऽऽश्रवैः ॥ ६ ॥

स्थिरता रतन का शुद्ध दीपक सर्वदा है दीपता।
संकल्प दीपक से लहुं क्यों धूप रूप विकल्पता ॥
परभाव चिंत संकल्प है उसका स्मरण विविकल्प है।
जो स्थिर बना आश्रव नहीं न संकल्प है न विकल्प है ॥ ६ ॥

यदि स्थिरता रूप रत्न-दीपक प्रज्ज्वलित हो रहा है, तो संकल्प रूप दीप से प्रगट होते विकल्प रूप धुऐं का व अतिमलीन पापों से (आश्रव) क्या ? (अर्थात् वहाँ पाप व विकल्प नही हो सकते)

The lamp of resolution has the scope for emitting the smoke of alternatives, but the lamp of stability or equanimity is always effulgent

उदीरयिष्यसि स्वान्ता-दस्थैर्यं पवनं यदि।
समाधेर्धर्ममेघस्य, घटां विघटयिष्यसि॥ ७॥

हे मूढ़! क्यों तूं चित्त में अस्थिर पवन को फूंकता।
सद्धर्म रूपी मेघ को अस्थिर पवन सब लूंटता॥
निज धर्म भाव समाधि को संभाल चेतन जागकर।
अस्थैर्य भाव निकाल बाहर स्थैर्य रस का पान कर॥ ७॥

यदि अस्थिरता रूप पवन अन्तःकरण में प्रगट करेगा तो समाधि रूप धर्म बादल की घटाऐं बिखर जायेगी।

Ye fool, why do you blow the wind of restlessness in your heart for it scatters the clouds of 'Sat-Dharma' (the path of righteousness) Awaken your conscience to the essense of true religion, push out restlessness and drink in the nectar of tranquility

चारित्रं स्थिरतारूप-मतः सिद्धेष्वपीष्यते।
यतन्तां यतयोऽवश्य-मस्या एव प्रसिद्धये॥ ८॥

चारित्र स्थिरता रूप है श्री सिद्ध में भी है कहा।
स्थिरता की प्राप्ति हेतु श्रम ही है जगत में श्रम महा॥
स्थिरता हृदय में ज्ञान की हो ध्यान की हो तो सदा।
तिर जाय मुनि इसके लिये पुरुषार्थ करते सर्वदा॥ ८॥

चारित्र स्थिरता रूप है, इस कारण सिद्धो मे भी चारित्र माना गया है। अतः इस स्थिरता की सम्पूर्ण सिद्धि के लिये अवश्य पुरुषार्थ करो।

Right conduct is another name of stability or equanimity It is believed that even liberated souls (Siddha) follow right conduct As such, one should strive hard for this equanimity through right knowledge, meditation and other such means

***

मोह त्याग-4

अहं ममेति मन्त्रोऽयं, मोहस्य जगदान्ध्यकृत्।
अयमेव हि नञ्पूर्वः, प्रतिमन्त्रोऽपि मोहजित्॥ १ ॥

नृप मोह का है मंत्र मेरा और मैं की भावना।
कर दे जगत को अंध पल में ऐसी है यह चिंतना॥
मै भी नहीं मेरा नहीं चिंतन करे ऐसा अगर।
यह मोहरिपु विजयी प्रबल शुभ मंत्र है शिवसिद्धि कर॥ १ ॥

"मैं और मेरा" यह मोह राजा का मंत्र है, वह जगत् को अंधा करने वाला है और नकार पूर्वक यही विरोधी मंत्र भी बन जाता है। वही मोह को जीतने वाला है।

APATHY

Even the kings are attached because of the chant– 'I' and 'mine', for this egotistic line of thought in a moment makes the world blind to everything else The simple way of counteracting this enemy of good sense is the negating chant–'there is no I' and 'nothing is mine'.

शुद्धात्मद्रव्यमेवाऽहं, शुद्धज्ञानं गुणो मम।
नान्योऽहं न ममान्ये चे-त्यदो मोहास्त्रमुल्वणम्॥ २॥

मैं शुद्ध आतम द्रव्य हूं गुण आत्म केवल ज्ञान है।
इससे अलग कुछ भी नहीं मेरा मुझे यह भान है॥
ऐसा मनन इक शस्त्र है जो मोहनाश करे सदा।
'मै' भान हो जाये अगर तो जीव बन जाये खुदा॥ २॥

मैं शुद्ध आत्म द्रव्य हूं केवल ज्ञान मेरा गुण है और इस कारण मैं भिन्न नही हूँ, न अन्य पदार्थ मेरे हैं, इस प्रकार का चिन्तन मोह का नाश करने वाला तीव्र शस्त्र है।

The thought that in the purest form 'I'am the soul (atman) and my special attribute is pure knowledge and that beyond this exists neither 'I' nor 'mine' is the most effective weapon against 'fondness'

योो न मुह्यति लग्नेषु, भावेष्वौदयिकादिषु।
आकाशमिव पङ्केन, नाऽसौ पापेन लिप्यते ॥ ३ ॥

जो कर्म उदये राग द्वेष न करे नर सम में रहे।
सुख प्राप्ति में आनंद ना हो दुःख भी हँसके सहे॥
ज्यों पंक से नभ लेप ना हो पाप त्यों टिकता नहीं।
ना राग हो ना द्वेष हो तो कर्म बंध सकता नहीं॥ ३ ॥

जो लगे हुवे औदयिक भावों में नही फंसता, वह जीव पाप से लिप्त नही होता। वैसे ही जैसे आकाश कभी कीचड़ से लिप्त नही होता।

Just like the sky cannot 'be dragged down to quagmire, likewise one who is free from the evils of attachment and aversion caused by the surfacing of 'karmas', remains uneffected by states of happiness and unhappiness Such a man cannot be dragged down to the 'Karmic' cycle

पश्यन्नेव परद्रव्य-नाटकं प्रतिपाटकम्।
भवचक्रपुरस्तोऽपि, नाऽमूढःपरिखिद्यते ॥ ४ ॥

है मोह रिपु विजयी न होता खिन्न रहे भवचक्रपुर।
हर पोल में नाटक विविध पर-द्रव्य रूपी देखकर॥
नर जन्म मृत्यु के ये नाटक देख निर्मोही बने।
यह जगत पुद्गल खेल है यह सोच साधक हरक्षणे॥ ४ ॥

अनादि अनंत कर्म परिणाम राजा की राजधानी स्वरूप भवचक्र नाम के नगर में रहने पर भी एकेन्द्रिय आदि नगर के दरवाजे-दरवाजे पर-द्रव्य का जन्म जरा मरणादि रूप नाटक देखता मोह रहित आत्मा खिन्न नही होता।

'Bhava Chakrapur' is the name of the city and the dwellers are oppressed by the enemy, attachment, and are anxious for they cannot overcome it Only the detached practicers.,—the Sadhaks remain undisturbed considering it to be a variegated drama of life and death that is enacted in every part of the city

विकल्पचषकैरात्मा, पीतमोहाऽऽसवो ह्ययम्।
भवोच्चतालमुत्ताल - प्रपञ्चमधितिष्ठति॥ ५॥

जो मोहरूपी मद्य पीए विकल्प रूपी पात्र से।
वह मोहग्रस्त विनष्ट सम घी आग स्पर्शन मात्र से॥
कर - द्वय करे ऊंचे बजावे तालियाँ यो जगत है।
वह मोहवश चेतन विकारे जगत आश्रय करत है॥ ५॥

विकल्प रूप मदिरा पात्रो के द्वारा मोह मदिरा पीने वाला यह जीव निश्चय ही जहां हाथ ऊंचे करके तालियाँ बजाने की चेष्टा की जाती है, ऐसे संसार रूप अड्डे का आश्रय करता है।

One who drinks the liquor of attachment from the bowl of alternatives makes himself vulnerable like butteroil is in the presence of fire The world is peopled with those who raise their hands and clap while the one in the grip of attatchment seeks refuge in the very same world.

निर्मलं स्फटिकस्येव, सहजं रूपमात्मनः ।
अध्यस्तोपाधिसम्बन्धो, जड़स्तत्र विमुह्यति ।। ६ ।।

निर्मल विमल आतम स्फटिक सम सहज सिद्ध स्वरूप है ।
अति स्वच्छ है सुविशुद्ध अजरामर स्वयं निजभूप है ।।
उसमें उपाधि संबंध कर अविवेक युत नर मूढ़ हो ।
दुष्कर्म आधि उपाधि से हो दूर शिव आरूढ़ हो ।। ६ ।।

आत्मा का स्वाभाविक सिद्ध स्वरूप स्फटिक जैसा निर्मल है उसमे उपाधि का संबंध आरोपित करके अविवेकी जीव उसमें फंसता है ।

The soul (atman) is pristine, pure and crystal clear. It is immortal and its own master. It is foolish to tarnish it with ill-feelings for when devoid of such dark spots of sins and deception the very same soul is akin to the pure ultimate soul

अनारोपसुखं मोह-त्यागादनुभवन्नपि।
आरोपप्रियलोकेषु, वक्तुमाश्चर्यवान् भवेत्॥ ७॥

निज भान ज्ञान स्वबोध का अनुभव जिन्होंने कर लिया।
उस भान को समझाऊं कैसे सोचता उनका हिया॥
कल्पित सुखों को सुख माने मूढ़ नर, आश्चर्य है!
निज सहज सुख तज कल्पना में क्या मिले माधुर्य है॥ ७॥

मोह के त्याग से आरोप रहित स्वभाव के सुख का योगी अनुभव करता हुआ भी, झूठा जिन्हे प्रिय है ऐसे लोगो के सामने अपना सुखानुभव कहता हुआ आश्चर्य वाला बनता है।

Those who have experienced the essence of the 'self' wonder how they may possibly express this realization

They wonder how, ignorant from the bliss of this realization, the foolish run after the mirage of mundane happiness

यश्चिद्दर्पणविन्यस्त - समस्ताऽऽचारचारुधीः ।
क्व नाम स परद्रव्ये-ऽनुपयोगिनि मुह्यति ? ॥ ८ ॥

निज ज्ञान रूपी कांच में स्थापित किये आचार है।
ऐसा मतीश्वर जानता पुद्गल सकल सविकार है॥
पर द्रव्य उपभोगी नहीं पहिचान होता मूढ़ ना।
यह मोह माया सकल है सम जान राक्षसी पूतना॥ ८ ॥

ज्ञान रूपी दर्पण में स्थापित समस्त ज्ञानादि पॉच आचारों द्वारा जो सुन्दर बुद्धि वाला है, ऐसा योगी अनुपयोगी पर - द्रव्यों मे आसक्त क्यों होगा।

One who has recognized and indentified his true 'self' in the mirror of knowledge acquired through the five rules of good conduct and righteounsess is aware of the maligned nature of everything material Such a yogi will never have fondness for the material world

***

ज्ञान–5

मज्जत्यज्ञः किलाऽज्ञाने, विष्ठायामिव शूकरः।
ज्ञानी निमज्जति ज्ञाने, मराल इव मानसे॥ १ ॥

शूकर बने ज्यों मगन विष्ठा में बने नर अज्ञ त्यों।
अज्ञान में ही राचता हो मगन श्रुत में सुज्ञ ज्यों॥
वर हंस सरवर मान में ही बन मगर सुख को लहे।
निज पर विवेकी तत्त्व ज्ञानी ज्ञान गंगा में बहे॥ १ ॥

जिस प्रकार शूकर विष्ठा मे मग्न होता है वैसे ही अज्ञानी अज्ञान में ही मग्न हो जाता है। जिस प्रकार हंस मान सरोवर में निमग्न होता है, उसी प्रकार ज्ञानी पुरुष ज्ञान मे ही निमग्न होते है।

KNOWLEDGE

Like a swine is attracted to his own spoils, an ignorant person remains attached to his ignorance, while those attached to the knowledge of the 'Shrutas' remain entranced like the swans of 'Mansarover' (the Lake in Paradise).

निर्वाणपदमप्येकं, भाव्यते यन्मुहुर्मुहुः ।
तदेव ज्ञानमुत्कृष्टं, निर्बन्धो नास्ति भूयसा ॥ २ ॥

बस मोक्ष पद अभिलाष की इक भावना प्रतिपल रहे ।
नहिं और कुछ चाहूं हृदय में भाव मुक्ति के बहे ॥
यह ज्ञान ही उत्कृष्ट है जो चित्त ने धारा अगर ।
ज्यादा भले न पढ़ा हो फिर भी है वही ज्ञानी प्रवर ॥ २ ॥

एक मात्र मोक्ष साधक पद वारम्वार आत्मा द्वारा भावित होता है अर्थात् बार-बार चिन्तन किया जाता है वही ज्ञान परिपूर्ण है । ज्यादा ज्ञान का आग्रह नही है ।

Even one who lacks formal education is a true knower if his heart sincerely desires liberation and true knowledge He needs no more

स्वभावलाभसंस्कार—कारणं ज्ञानमिष्यते।
ध्यान्ध्यमात्रमतस्त्वन्यत्, तथा चोक्तं महात्मना॥ ३॥

जिससे निजात्म स्वभाव की उपलब्धि हो वह ज्ञान है।
सद्ज्ञान ही बस इष्ट है नहिं इष्ट जग विज्ञान है॥
निज भान जो देता नहीं वह ज्ञान रूचिकर है नहीं।
वह ज्ञान मति-अंधत्व है ऋषि सकल फरमाते यही॥ ३॥

जो ज्ञान आत्म स्वभाव की प्राप्ति के संस्कार का कारण - भूत है, वही ज्ञान इच्छनीय है इसके अलावा जो भी पढ़ा जाता है वह तो बुद्धि का अंधत्व है।

इसी प्रकार महात्मा पतंजलि ने भी कहा है।

The great sage Patanjali confirms this that one that leads to the knowledge of the 'Self' alone is true knowlege Science is the knowledge of the world but the sages say that what should be desired is the knowledge of the self (Self-realization). That which does not enlighten the self is ignorance not knowledge

वादांश्च प्रतिवादांश्च, वदन्तोऽनिश्चितांस्तथा।
तत्त्वान्त नैव गच्छन्ति, तिलपीलकवद् गतौ ॥ ४ ॥

अल्पज्ञ पंडित वादचर्चा में अनिश्चित ही रहे।
वे पूर्व उत्तर पक्ष में दिन रात फँसते ही रहे॥
ज्यों बैल घाणी का जगह इक में ही दिन भर घूमता।
त्यों तत्त्व परिणति प्राप्त ना सद् ज्ञान बिन नर घूमता ॥ ४ ॥

अनिश्चित अर्थ वाले वाद और प्रतिवाद करने वाले जीव आगे बढ़ने मे घाणी के बैल की तरह तत्व निर्णय को प्राप्त नहीं कर पाते हैं।

Pundits with little knowledge get embroiled in futile discussions and dogmas. Lacking in true knowledge they go round and round just like the yoked bull in an oil mill

स्वद्रव्यगुणपर्याय—चर्या वर्या पराऽन्यथा।
इति दत्तात्मसन्तुष्टि— र्मुष्टिज्ञानस्थितिर्मुनेः ॥ ५ ॥

निज शुद्धि आतम द्रव्य में पर्याय में रमते रहो।
सद् ज्ञान दर्शन चरण निज गुण ज्ञान गंगा में बहो॥
हितकर नहीं पर द्रव्य गुण पर्याय में हो रमणता।
मुनि ज्ञान का यह सार है संतोष कारक श्रमणता॥ ५ ॥

अपने द्रव्य गुण और पर्याय मे परिणत रहना श्रेष्ठ है पर द्रव्य-गुण-पर्याय में परिणत होना श्रेष्ठ नही है, इस प्रकार जिसने अपनी आत्मा को संतोष दिया है ऐसी संक्षेप से रहस्य ज्ञान की मर्यादा मुनि को होती है।

Dwell in the various forms of self-purification and flow along with the 'Ganges' of right knowledge and right experience of the 'self' not the 'other'. Only the true sages are aware of this conciseness of the esoteric knowlege.

अस्ति चेद् ग्रन्थिभिद् ज्ञानं, किं चित्रैस्तन्त्रयन्त्रणैः।
प्रदीपाः क्वोपयुज्यन्ते, तमोघ्नी दृष्टिरेव चेत्? ॥ ६ ॥

जब ज्ञान से ही ग्रन्थि मिटती राग द्वेष मिटे सकल।
फिर शास्त्र बंधन की जरूरत है नहीं मुझको प्रबल॥
तम नाश चक्षु से ही हो कर क्या सके दीपक वहाँ।
हे भव्य जीवों ! ज्ञान धारो शिव वहाँ श्रुत है जहाँ॥ ६ ॥

ग्रन्थि भेद से जिसे ज्ञान हो गया है, उसको अनेक प्रकार के शास्त्रों का बंधन किस काम का है ? जब आँख ही अंधकार को नाश कर देती है, वहां दीपकों का क्या उपयोग है ?

O' you, the elevated beings! know that through right knowledge all the mysteries are unfolded and answers acquired. Then the reliance on the scriptures is as unnecessary as the lamp is when the inner light is there to dispel the darkness.

मिथ्यात्वशैलपक्षच्छिद्, ज्ञानदम्भोलिशोभितः ।
निर्भयः शर्कवद्योगी, नन्दत्यानन्दनन्दने ॥ ७ ॥

मिथ्यात्व रूपी शैल को तोड़े सदा श्रुत वज्र सम।
श्रुत वज्र कर में इन्द्र सम मुनि तोडते जग सकल भ्रम ॥
है पास जिसके ज्ञान निज वो साधु निर्भयता वरे।
सद् ज्ञान से ही आत्म का मिथ्यात्व रूपी तम हरे ॥ ७ ॥

मिथ्यात्व रूप पर्वत के पक्ष का छेद करने वाला और ज्ञान रूप वज्र से सुशोभित और इन्द्र के समान निर्भय योगी आनन्द रूप नंदन वन में क्रीडा करता है, सुख अनुभव करता है।

The mountain of illusions is broken down by the dynamite of knowledge With the power of knowledge the sages break the whirlpool of illusions in the world. Thus, those endowed with the knowledge of the 'self' are fearless and can easily dispel the darkness of illusions on their own and thus enjoy the garden of bliss.

पीयूषमसमुद्रोत्थं, .रसायनमनौषधम्।
अनन्याऽपेक्षमैश्वर्यं, ज्ञानमाहुर्मनीषिणः ॥ ८ ॥

सद्ज्ञान अमृत है परम उत्पन्न सागर से नहीं।
है परम उत्तम वर रसायण किन्तु औषधि है नहीं॥
ऐश्वर्य ऐसा है महा पर की अपेक्षा है नहीं।
जिन देव भाषित ज्ञान की उपमा न जग में है कहीं॥ ८ ॥

ज्ञान अमृत है लेकिन समुद्र से उत्पन्न नही है। ज्ञान रसायन है, पर औषध नहीं है। ज्ञान ऐश्वर्य है, पर किसी अन्य की अपेक्षा नहीं है, ऐसा ज्ञानी कहते हैं।

Right knowledge is the elixir of life though it is not that which was salvaged from the oceans It is the best chemical though it is not a medicine It is a state of exaltation independent of material comforts True knowledge is beyond compare, thus say the sages

***

शम-6

विकल्पविषयोत्तीर्णः, स्वभावाऽऽलम्बनः सदा।
ज्ञानस्य परपाको यः, स शमः परिकीर्तितः ॥ १ ॥

हो इष्ट प्राप्ति अनिष्ट नष्ट न रूप कोई विकल्प है।
निज शुद्ध ध्याने स्व स्वरूपे रमणता यह कल्प है॥
सद्ज्ञान का ऐसा सुखद फल शम कहावे शास्त्र में।
शमधारि मुनि हो चलित ऐसी शक्ति ना ब्रह्मास्त्र में॥ १ ॥

विकल्प रूप विषयों से निवृत्त बना, निरन्तर आत्मा के शुद्ध स्वभाव का आलंबन जिसे हैं, ऐसा ज्ञान का परिणाम समभाव कहलाता है।

PACIFICATION

Abscence of agitation born of alternatives and perpetual indulgence in the self, a state that is the result of maturity of right knowledge, is called pacification or equanimity.

अनिच्छन् कर्मवैषम्यं, ब्रह्मांशेन समं जगत्।
आत्माऽभेदेन यः पश्ये-दसौ मोक्षंगमी शमी ॥ २ ॥

नहिं इच्छता जो कर्म का वैषम्य मुनि उत्कृष्ट है।
सब जगत में चिहुं ओर मुनि से ब्रह्म सम शुभ दृष्ट है॥
जग के सकल जीवों को देखे साधु वर जो आत्म सम।
शम शान्त रस में लीन मुनि कर पाप क्षय हो सिद्ध सम ॥२ ॥

जा कर्म की विषमता को नही चाहता, परमात्मा के अंश द्वारा बने एक स्वरूप वाले जगत को अपनी आत्मा से अभिन्न जो देखता है, वह उपशम वाला आत्मा अवश्य मोक्षगामी होता है।

The pacified soul that does not desire the entanglement of Karma and considers every being in the world to be a part of the ultimate whole (Brahma) like his own self and not different, is sure to attain liberation (Moksha).

आरुरुक्षुर्मुनिर्योगं, श्रयेद् बाह्यक्रियामपि।
योगारूढः शमादेव, शुद्ध्यत्यन्तर्गतक्रियः ॥ ३ ॥

मुनि योग भाव समाधि में चढ़ने की इच्छा जो करे।
वो बाह्य किरिया साधते शुभ ध्यान से भी मन भरे॥
जो चढ़ गये निजयोग में अन्तर् क्रिया करते रहे।
उपशम हृदय भर शुद्ध हो सुविशुद्ध संपद् निज लहे॥ ३ ॥

समाधि योग मे ऊपर चढ़ने की आकांक्षा वाला साधु बाह्य आचार का भी सेवन करता है, लेकिन योगारुढ़ आभ्यन्तर क्रियावान् साधु तो समभाव से ही शुद्ध होता है।

The ascetic who desires to progress on the path of yoga also observes the code of conduct and such other practices. But those who indulge in spiritual practices like meditation and have started on the path of yoga attain purity of soul simply through equanimity.

ध्यानवृष्टेर्दयानद्याः, शमपूरे · प्रसर्पति।
विकारतीरवृक्षाणां, मूलादुन्मूलनं भवेत्॥ ४॥

शुभ ध्यान की बरसात से करुणा नदी के नीर के।
शम पूर में बह जाय विकृति वृक्ष सारे तीर के॥
सब मूल से ही उखड़ जावे हो विकारों का शमन।
शम भाव में क्षमता भरी हो जाय दोषों का दमन॥ ४॥

ध्यान रूप वर्षा से दया रूप नदी का उपशम रूप पूर बढ़ने से किनारे पर स्थित विकार रूप वृक्ष जड़ मूल से उखड़ जाते हैं।

The shower of meditation causes in the river of compassion an overflow of equanimity that uproots the trees of evil feelings or flaws on the river blank

ज्ञानध्यानतपःशील – सम्यक्त्वसहितोऽप्यहो।
तं नाप्नोति गुणं साधुर्यं प्राप्नोति शमाऽन्वितः ॥ ५ ॥

सम्यक्त्व युत कितना भी तप जप ज्ञान ध्यान करे मुनि।
यदि शम नहीं तो कुछ नहीं करता भले मुनि पुनि पुनि ॥
शम ही गुणों का सार है, सरदार है, आधार है।
शम युत मुनीश्वर ही लहे निज भान ज्ञान-विचार है ॥ ५ ॥

सम युक्त साधु जिस गुण को प्राप्त करता है। अहो! ज्ञानं-ध्यान-तप-शील और सम्यक्त्व सहित साधु भी उस गुण को प्राप्त नही कर सकता।

No matter how hard a Muni tries and with as much equilibrium, still everything comes to naught unless he achieves equanimity through right knowledge and realization of the self

स्वयंभ्भूरमणस्पर्द्धि - वर्द्धिष्णुसमतारसः ।
मुनिर्येनोपमीयेत, कोऽपि नाऽसौ चराचरे ॥ ६ ॥

सागर स्वयंभूरमण में जितना भरा शुभ नीर है।
शम रूप रस उतना भरा जिस साधु में वो वीर है॥
उस साधु के समकक्ष उपमा इस जगत में है नहीं।
वह साधु सच्चा धीर है गंभीर है शिवतीर है॥ ६ ॥

जिस मुनि का समता रस स्वयंभूरमण समुद्र की स्पर्धा करता हो, इस प्रकार वृद्धि प्राप्त करता है, उस मुनि की तुलना करने योग्य कोई भी पदार्थ समग्र विश्व में नही है।

That Sadhu alone is truly calm and profound and is beyond compare whose heart is filled with the waters of equanimity like the waters that fill the fathomless pit of an ocean

शमसूक्तसुधासिक्तं, येषां नक्तंदिनं मनः।
कदापि ते न दह्यन्ते, रागोरगविषोर्मिभिः। ७ ॥

जिसका हृदय सम रूप अमृत से सदा सिंचित रहे।
हर समय मन में शान्ति समता का सुधारस ही बहे॥
वह राग रूपी नाग विष की उर्मियों से ना जले।
मुनिराज के मन रूप सर में शान्ति कमल सदा खिले॥ ७ ॥

जिनका मन रात और दिन सम के सुभाषित अमृत द्वारा सिंचित है, वे कभी भी राग रूप सर्प के जहर की उर्मियों द्वारा नही जलते हैं।

A heart which is forever inundated with the elixir of equanimity is always at peace Such a heart never burns with the spurts of fire of the venom of the snake of anger. Such a heart always has the lotus of peace blossoming in it

गर्जज्ज्ञानगजोत्तुङ्गा, रङ्गद्ध्यानतुरङ्गमाः ।
जयन्ति मुनिराजस्य, शमसाम्राज्यसम्पदः ॥ ८ ॥

मुनिराज का शमरूप ही सुन्दर बड़ा साम्राज्य है।
इस राज्य में मद मदन रति मिथ्यात्व माया त्याज्य है ॥
सद्ज्ञान रूपी हस्तिदल करता रहे शुभ गर्जना।
क्रीडा करे शुभ ध्यान रूप तुरंग अद्भुत वर्णना ॥ ८ ॥

जिनके पास गर्जना करते ज्ञान रूप हाथी और खेलते हुए ध्यान रूप घोड़े हैं, ऐसे मुनिराज रूप राजा के शम रूप साम्राज्य की संपत्ति सदा जयवन्त रहती है ।

The equanimous stature of a 'Muniraj' is akin to an empire There lust for wine, women, untruths and illusions are forbidden. Right knowledge like a herd of elephants trumpets there . Inexplicably wonderful and auspicious thoughts seem to frolic like horses there.

***

इन्द्रिय-जय-7

बिभेषि यदि संसारान्मोक्षप्राप्तिं च काङ्क्षसि।
तदेन्द्रियजयं कर्तुं, स्फोरय स्फारपौरुषम्॥ १॥

भय जो लगे यदि जगत से चाहे सदा शिव रत्न को।
तो सकल अपनी इन्दियाँ हर समय काबू में रखो॥
उद्देश्य जीवन का बने अपना सकल पुरुषार्थ हो।
जो इन्द्रियों पर पाई विजय तो आप सच्चे पार्थ हो॥ १॥

यदि तू संसार से डरता है और मोक्ष प्राप्ति की आकांक्षा है रखता तो इन्द्रियों पर विजय प्राप्त करने के लिए उग्र पराक्रम प्रकट कर।

VICTORY OVER SENSES

If you fear the ways of the world and desire liberation keep your sense organs under control The sole aim of life then should be to stir valour and reign over ones senses

वृद्धास्तृष्णाजलाऽपूर्णैरालवालैः किलेन्द्रियैः।
मूर्छामतुच्छां यच्छन्ति, विकारविषपादपाः ॥ २ ॥

जल कामना से भरी क्यारी पंच इन्द्रिय रूप ये।
इसमें बढ़े विषवृक्ष विकृति रूप बनते भूप ये॥
ये हुक्म देते भूप नकली मोह वृद्धि को करे।
जड़मूल से विच्छेद कर ये आत्मगुण सारे हरे॥ २ ॥

तृष्णा रूप जल से परिपूर्ण इन्द्रियॉ रूप क्यारियों मे पोषित विकार रूप विषवृक्ष आत्मा को गाढ मूर्च्छित करते है।

The five senses are like flower beds watered with desires The plants of flaw that grow in them are like monsters In their reign of terror fondnes and attachment flourish They threaten to uproot the radical characteristics of the soul (atman)

सरित्सहस्रदुष्पूरसमुद्रोदरसोदरः ।
तृप्तिमान्नेन्द्रियग्रामो, भव तृप्तोऽन्तरात्मना ॥ ३ ॥

ये इन्द्रियाँ ऐसा है सागर तृप्त जो होता नहीं।
हजार नदियाँ भी गिरे तो भी अधूरा ही सही ॥
इन इन्द्रियों को तृप्त करने विषय जग के तुच्छ है।
निज बोध से परितृप्त हो हे जीव! तूं ही स्वच्छ है ॥ ३ ॥

हजारों नदियों से भी जिसे पूर्ण नही किया जा सकता, ऐसे समुद्र के पेट के समान इन्द्रियों का समूह तृप्त नही होता, ऐसा जानकर अन्तरात्म भाव से तृप्त बन।

The senses are insatiable just like it is impossible for even thousands of rivers to quench the thirst of the ocean. The objects that attempt to satiate this enormous lust of the senses are meagre Knowing this, the best thing to do is to be satiated with self realization

आत्मानं विषयैः पाशैर्भववासपराङ्.मुखम्।
इन्द्रियाणि निबध्नन्ति, मोहराजस्य किङ्कराः ॥ ४ ॥

जो जीव भ्रमणा से थका संसार तज धारा संयम।
उस जीव को भी फांस देती इन्दियाँ ये बेशरम ॥
ये मोह नृप की दासियाँ विष विषय बन्धन बांधते।
जो दूर इन्द्रिय-विषय से मुनि वे ही आतम साधते ॥ ४ ॥

संसार वास से उद्विग्न बनी आत्मा को भी मोह राजा की नौकर रूप इन्द्रियाँ विषय रूप बंधन से बांध देती हैं।

The senses manage to overpower even those who are tired of journeying through the various life cycles They are like maids to the king named'desire'. So those who meditate withremain far from the goadings of the senses

गिरिमृत्स्नां धनं पश्यन्, धावतीन्द्रियमोहितः।
अनादिनिधनं ज्ञानं, धनं पार्श्वे न पश्यति॥ ५॥

बन मूढ़ नर गिरि मृत्तिका में देख कर धन दौड़ता।
निज चेतना के कोष को उस मिट्टी हेतु छोड़ता॥
देखे नहीं झांके नहीं भीतर भरा श्रुत कोष है।
इन्द्रिय नियंत्रण जो करे पाता वही संतोष है॥ ५॥

इन्द्रियो के विषय में मूढ बना जीव पर्वत की मिट्टी मे भी धन देखकर दौड़ता रहता है लेकिन अपने भीतर भरे अनादि अनंत ज्ञान रूप धन को नहीं देखता।

Driven by the illusion of wealth man runs after a heap of sand. He forgoes the treasures of his conscience for that heap of mud. He does not peep inside his heart which is a treasure trove of infinite knowledge One should realize that only the control over the senses leads to contentment

पुरः पुरः स्फुरत्तृष्णामृगतृष्णाऽनुकारिषु।
इन्द्रियार्थेषु धावन्ति, त्यक्त्वा ज्ञानाऽमृतं जडाः ॥ ६ ॥

हर समय उठती कामना ज्यों पूर्ण हो उठती नई।
है कामना मृग मरीचिका सम होश में आओ भई ॥
इन्द्रिय सुखों के कीच पीछे मूर्ख क्यों तूं दौड़ता।
पाने उसे निज ज्ञान अमृत आत्म गंगा छोडता ॥ ६ ॥

जिनकी तृष्णा उत्तरोत्तर बढ़ती रहती है, ऐसे मूर्ख पुरुष ज्ञान रूप अमृत को छोड़कर मृग तृष्णा रूप इन्द्रियों के विषयों में दौड़ता रहता है।

A desire resurfaces every time it is satiated. It is like a mirage. So wake up, why like a fool should you pursue it ? Why forsake self-realization for it ?

पतङ्ग--भृङ्ग-मीनेभसारङ्गा यान्ति दुर्दशाम्।
एकैकेन्द्रियदोषाच्चेद्, दुष्टैस्तैः किं न पञ्चभिः ॥ ७ ॥

इन्द्रिय विलासी एक के होती दशा कितनी बुरी।
जो पांच में ही फॅस गया कैसी बने उसकी धुरी॥
गज हिरण मत्स पतंग भृंगादि ये इन्दिय वश मरे।
हे जीव ! तेरी क्या दशा हो सोच अब जग जा अरे॥ ७ ॥

पतंगिया, भ्रमर, मत्स्य, हाथी और हिरण ये एक-एक इन्द्रिय में आसक्त होकर जब दुर्दशा को प्राप्त करते हैं तो दुष्ट पांचों इन्द्रियों द्वारा क्या नही हो सकता।

The plight of one who is a slave of his senses is always pitiable Opressed by those five senses how can he save himself when elephant, deer, fish, birds and insects overpowered by just one sense lose their lives Man, at least this realization should caution you

विवेकद्विपहर्यक्षैः, समाधिधनतस्करैः।
इन्द्रियैर्न जितो योऽसौ, धीराणां धुरि गण्यते॥ ८॥

इन्द्रिय विनाशे सिंह सम गज रूप आत्म विवेक को।
है चोर सम ये इन्द्रियाँ चोरे समाधि स्वभाव को॥
ऐसी भयंकर इन्द्रियों से जो नहीं हारा कभी।
वह धीर पुरुषों में प्रवर है वंदना करते सभी॥ ८॥

विवेक रूप हाथी का नाश करने में सिंह के समान और समाधि रूप धन को लूटने वाली दुष्ट इन्द्रियों से जो नहीं हारा, वह धीर पुरुषो मे अग्र माना जाता है।

The senses kill reason as a lion kills elephant and deprive one of his concentration (in meditation) as a smuggler deprives one of ones wealth

A person who does not surrender to the attacks of the senses is truly venerable

***

त्याग-४

संयताऽऽत्मा श्रये शुद्धोपयोगं पितरं निजम्।
धृतिमम्बाञ्च पितरौ, तन्मां विसृजतं ध्रुवम्॥ १ ॥

शुद्धोपयोग स्वरूप तात तथा स्विकारूँ मां धृति।
मां तात तारणहार ये सच्चे न देते विकृति॥
हे तात ! अम्बा ! मैं बनूं संयत मुझे दो स्वीकृति।
अतएव मुझको छोड़ दो, विनती करूँ धर आदृति॥ १ ॥

संयम विमुख बना मैं शुद्ध उपयोग रूप अपने पिता का और आत्म - रति रूप माता का आश्रय स्वीकार करता हूँ, अतः हे ! माता-पिता मुझे अवश्य छोड़ो।

DETACHMENT

Purity of purpose is like my father & indulgence in the self is like my mother These are like my true emancipators and can cause no harm so I seek refuge unto them. So O'ye mother and O'ye father, I beseech you to release me.

युष्माकं सङ्गमोऽनादिर्बन्धवोऽनियतात्मनाम्।
ध्रुवैकरूपान् शीलादिबन्धूनित्यधुना श्रये॥ २॥

अस्थिर सकल संबंध अनियत बंधु बांधव भी सकल।
जग स्वार्थ वशरिपु भी बने कल आज बांधव जो विकल॥
मैं आज स्वीकारूँ निजातम के जो सच्चे सुहृद् है।
शम सत्य स्थिर संतोष शीलादिक सुहृद् सब सुखद है॥ २॥

हे बन्धुओ ! तुम्हारा संबंध प्रवाह से अनादि है और अनिश्चित स्वरूप वाला है अतः अब मैं नित्य एक स्वरूप वाले शील आदि बन्धुओं का आश्रय ग्रहण करता हूं।

Every relationship, natural or coincidental, like friendship, is transitory and impermanent Friends of today become foes of tommorow The true friends of the soul are real equanimity, truth, unshakeable contentment and good conduct, etc., that are not ephemeral and provide true happiness

कान्ता मे समतैवैका, ज्ञातयो मे समक्रियाः।
बाह्यवर्गमिति त्यक्त्वा, धर्मसंन्यासवान् भवेत्॥ ३॥

प्रिय प्रिया समता और ना जग बाह्य ना अच्छा लगे।
जिन साधुओं की एक किरिया वही ज्ञाति मुझे लगे॥
यों चिंतना कर धर्म में दीक्षित बनूं जग छोडकर।
सब बाह्य ऋद्धि समृद्धि छोडूं सकल बंधन तोडकर॥ ३॥

एक समता ही मेरी पत्नी है और समान आचरण वाले साधु मेरे ज्ञातिजन है (ऐसा विचार कर) इस प्रकार बाह्य वर्ग का त्यागकर धर्म - संन्यासी होता है।

A sense of equanimity is closest to the heart Sadhus who behave with equanimity appeal to me Such thoughts after renunciation of the world are the ones that expand my vistas. By abandoning all relationships I can give up all the false outer grandeur and affluence

धर्मास्त्याज्या सुसङ्गोत्थाः, क्षायोपशमिका अपि।
प्राप्य चन्दनगन्धाभं, धर्मसंन्यासमुत्तमम्॥ ४॥

अति दिव्य चंदन बावना की सुरभि रूपी धर्म है।
संन्यास पाकर प्राप्त करता धर्म का शुभ मर्म है॥
क्षायोपशमिक है धर्मत्याज्य सुसंग से उत्पन्न जो।
तन जगत माया धारते संन्यास जो नर धन्न वो॥ ४॥

चंदन की सुगंध के समान श्रेष्ठ धर्म संन्यास को प्राप्त कर लेने के बाद सत्संग से उत्पन्न क्षायोपशमिक धर्म भी छोड़ने योग्य होते हैं।

'Dharma' (right or spiritual path) is like divine frangance of sandalwood. He who acquires this fragrance through renunciation (Sanyas) rises above the pacifiying and purifying religion inspired by pious company

गुरुत्वं स्वस्य नोदेति, शिक्षासात्म्येन यावता।
आत्मतत्त्वप्रकाशेन, तावत् सेव्यो गुरूत्तमः ॥ ५ ॥

जब तक निजातम रमणता रूपी गुरूत्व न पा सको।
गुरूवर समीपे प्राप्त कर शिक्षा स्वबोध न पा सको॥
तब तक रहो तुम सर्वदा गुरू सन्निधि स्वीकार कर।
निश्रा गुरू की बोध देती दिशा देती तिमिर हर॥ ५ ॥

जब तक शिक्षा के सम्यक् परिणाम से आत्म स्वरूप के बोध द्वारा स्वयं का गुरुत्व प्रकट नही होता तब तक उत्तम गुरु का सेवन करना चाहिये।

Till self realization is not achieved, it is best to be in the company and guidance of one's guru The accomplished guru guides along the right path leading one from darkness to light

ज्ञानाऽचारादयोऽपीष्टाः, शुद्धस्वस्वपदावधि।
निर्विकल्पे पुनस्त्यागे, न विकल्पो न वा क्रिया॥ ६॥

निज शुद्ध पद सीमा तलक ही मान्य ज्ञानाचार है।
जब प्राप्त उत्तम निर्विकल्प दशा न कोई विचार है॥
ऐसी परम उत्कृष्ट भावोल्लास जागृति- हो गई।
न विकल्प है ऐसी दशा में सफल किरिया खो गई॥ ६॥

ज्ञानाचार आदि आचारो का पालन भी अपने उस उस शुद्ध पद की प्राप्ति तक ही इष्ट है निर्विकल्प समाधि रूप त्याग की अवस्था में कोई विकल्प भी नही है और कोई क्रिया भी नही है।

There are certain limitations to the optimal utility of knowledge for once a state of unambiguity is reached an inexplicable feeling of exaltation pervades the being In that state there are neither any alternatives nor any outward activity.

योगसंन्यासतस्त्यागी, योगानप्यखिलांस्त्यजेत्।
इत्येवं निर्गुणं ब्रह्म, परोक्तमुपपद्यते ॥ ७ ॥

क्षायोपशमिक तजी करे फिर योग का भी निरोध हो।
सब योग का भी त्याग कर दें, प्राप्त फिर निज बोध हो ॥
कहते कि दर्शन अन्य ऐसा ब्रह्म (आत्म) निर्गुण होत है।
यह- बात ऐसे में घटे, लगते स्व आकर गोत है ॥ ७ ॥

त्यागी आत्मा अन्त में योग संन्यास से समस्त योगो का भी त्याग करता है, इस प्रकार अन्य दर्शनों में वर्णित निर्गुण ब्रह्म भी घटित हो जाता है।

The soul on the path of detachment finally gets rid of all ties through spiritual practices. Thus the concept of formless and attributeless 'Brahma' of other schools is also confirmed

वस्तुतस्तु गुणैः पूर्णमनन्तैर्भासते स्वतः।
रूपं त्यक्तात्मनः साधोर्निरभ्रस्य विधोरिव ॥ ८ ॥

आत्मा गुणों की राशि इसमें गुण अनन्ता हैं भरे।
जब सब विभाव मिटे तभी निज रूप देखी मन ठरे॥
ज्यों मेघ विरहित चन्द्र भासे पूर्ण प्रकटित हो स्वतः।
त्यों कर्म विरहित पूर्ण गुण भासे ही पूरण है अतः ॥ ८ ॥

जिस प्रकार बादल रहित चन्द्रमा अपने तेज से स्वयं प्रकाशित होता है, उसी प्रकार अनंत गुणों से परिपूर्ण त्यागवंत साधु का स्वरूप स्वयं प्रकाशित होता है।

The Atma (soul) is a cluster of infinite virtues. When clouds of ambiguity disperse, the true scintillating form of the self emerges. As on a cloudless night the natural glow of the full moon can be seen, likewise all the virtues of the soul become self-evident in a completely detached ascetic

***

क्रिया-9

ज्ञानी क्रियापरः शान्तो, भावितात्मा जितेन्द्रियः ।
स्वयं तीर्णो भवाम्भोधेः, परांस्तारयितुं क्षमः ॥ १ ॥

सद्ज्ञान युत उपशान्त है रुचि है क्रिया में सरल है।
जित इन्द्रियाँ है भावितात्मा साधु निर्मल विमल है ॥
गुणयुक्त ऐसा साधु तिरता और सबको तारता।
शुभज्ञान युत किरिया समक्षे मोह राजा हारता ॥ १ ॥

सम्यग् ज्ञानी, क्रिया में तत्पर, शान्त, भावित और इन्द्रिय विजेता ऐसी आत्मा स्वयं संसार रूपी समुद्र से तिरी हुई है और अन्यों को भी तारने में समर्थ है।

PRACTICE

With a sincere interest in practices, endowed with right knowledge and peace, in control of his sense organs, such a sadhu overcomes attachment and acquires liberation for himself and others as well

क्रियाविरहितं हन्त, ज्ञानमात्रमनर्थकम्।
गतिं विना पथज्ञोऽपि, नाप्नोति पुरमीप्सितम्॥ २॥

हो ज्ञान केवल ना हो किरिया तो अनर्थक हो सही।
मिलता नहीं है मोक्ष उससे क्रिया जिसमें हो नहीं॥
जो जानता पथ को परन्तु गमन जो करता नहीं।
ज्ञाता भले हो गति बिना इच्छित नगर पहुँचे नहीं॥ २॥

क्रियारहित अकेला ज्ञान निश्चित ही असमर्थ है। मार्ग का जानकार भी चलने की क्रिया के अभाव में इच्छित नगर नहीं पहुँच सकता।

A knowledge without the pursuance of right practices is futile. Liberation cannot be achieved without the will to indulge in practices. One who knows the way but does not traverse it, may know the path but will never reach his destination.

स्वानुकूलां क्रियां काले, ज्ञानपूर्णोऽप्यपेक्षते।
प्रदीपः स्वप्रकाशोऽपि, तैलपूर्त्यादिकं यथा॥ ३ ॥

संपूर्ण ज्ञानी भी करे वर योग्य किरिया निर्मली।
अनुकूल हो निज भाव में तो क्रिया करते केवली॥
दीपक स्वयं होता उजाला तेल फिर भी चाहिये।
ज्यों तेल उसको त्यों क्रिया अनुकूल चित्त लगाइये॥ ३ ॥

जिस प्रकार दीपक स्वयं प्रकाश रूप है फिर भी तेल पूरने आदि की क्रियाऐ अपेक्षित रहती हैं उसी प्रकार पूर्ण ज्ञानी भी समयानुसार स्वभाव रूप कार्य के अनुकूल क्रियाओं की अपेक्षा रखता है।

A lamp emanates light and yet its light is dependent on the proportion of oil that is put in it. Likewise even a knowledgeable 'yogi' or knower has to indulge in practices suited to his level of purity.

बाह्यभावं पुरस्कृत्य, ये क्रियां व्यवहारतः।
वदने कवलक्षेपं, विना ते तृप्तिकांक्षिणः ॥ ४ ॥

किरिया निकम्मी बाह्य रूपी यों कहे व्यवहार से।
उन मूढ़ जीवों को बतावे वीर निज आचार से॥
बिन कवल क्षेपण तृप्ति ना त्यों क्रिया का ही महत्त्व है।
किरिया करे निज में रमे पावे निजातम सत्त्व है॥ ४ ॥

क्रिया के बाह्य भाव को आगे रखकर जो लोक व्यवहार से क्रिया निषेध करते हैं वे मुँह में निवाला रखे बिना ही तृप्ति पाना चाहते हैं।

Wise men explain to the foolish through their good deeds that an outward show of actions without inner feelings is as good as wanting to satiate ones hunger without actually putting the morsel in one's mouth

गुणवद्बहुमानादे-र्नित्यस्मृत्या च सत्क्रिया।
जातं न पातयेद्भावमजातं जनयेदपि ॥ ५ ॥

गुण गुणी का सम्मान, स्वीकृत नियम नित्य स्मरण करें।
ऐसी क्रिया शुभकारिणी सहकारिणी शिव पद वरें॥
शुभ भाव जगते पूर्व आगत भाव शुभ सुस्थिर करे।
संबोधि दायक त्राणदायक क्रिया अघ दल मल हरे॥ ५ ॥

गुणवंत के बहुमान आदि से तथा स्वीकृत नियमों के नित्य स्मरण से शुभ क्रिया उत्पन्न भावो की रक्षा करती है अर्थात् गिरने नही देती और अनुत्पन्न भावों को भी प्रकट करती है।

Paying due respect to accomplished persons and regular recounting of the accepted codes of conduct are practices that promote pious feelings and take one to an exalted state of existence

क्षायोपशमिके भावे, या क्रिया क्रियते तया।
पतितस्यापि तद्भावप्रवृद्धिर्जायते पुनः ॥ ६ ॥

क्षायोपशमिक सुभाव में किरिया परम करता रहे।
ऐसी क्रिया का सुखद अद्भुत लाभ चेतनता लहे॥
गिर जाय भाव विशुद्धि फिर भी पुनर्वृद्धि हो सके।
शुभ क्रिया में शक्ति अनूठी भाव परिणमता पठे॥ ६ ॥

क्षायोपशमिक भाव में जो क्रिया की जाती है उस क्रिया के द्वारा पतित भावों की भी विशुद्धि एवं वृद्धि होती है।

•

Practices should be done with equanimity maintaining a state of equilibrium, for the power obtained through such practices is amazing. If perchance there is a fall in mental purity then the power of good practices is such that it lifts one back to the state of pacification and purity.

गुणवृद्धयै ततः कुर्यात्, क्रियामस्खलनाय वा।
एंकं तु संयमस्थानं, जिनानामवतिष्ठते ॥ ७ ॥

गुण वृद्धि करने के लिये अस्खलित रहने के लिये।
किरिया करो करते रहो, त्यों सहस श्रुत जलते दिये ॥
है एक संयम स्थान केवल केवली जिन के लिये।
बाकी सभी किरिया करो निज बोध पाने के लिये ॥ ७ ॥

इसलिए गुण की वृद्धि के लिये अथवा उत्पन्न भाव गिर न जाय इसलिए क्रिया करनी चाहिये। एक संयम का स्थान तो केवल ज्ञानी को ही रहता है।

Only the omniscient (Kevali) reaches the state of untarnishable absolute purity, so all other seekers should indulge in right practices for qualitative enhancement as well as for maintaining the attained level of purity.

वचोऽनुष्ठानतोऽसङ्ग क्रियासङ्ग-तिमङ्गति।
सेयं ज्ञानक्रियाभेदभूमिरानन्दपिच्छला॥ ८॥

वचनानुष्ठान से असंग किरिया योग्यता धारण करे।
यह असंग किरिया ज्ञान किरिया एकता दर्शित करे॥
शुद्धोपयोगी रूप श्रुत उल्लास रूप क्रिया बड़ी।
ऐसी क्रिया में भाव निज के हर्ष की लडियाँ जडी॥ ८॥

वचनानुष्ठान से असंग क्रिया की योग्यता प्राप्त होती है। वह ज्ञान और क्रिया की अभेद भूमि है और आत्मा के आनंद द्वारा भीगी हुई है।

Through evoking and indulging in the practices of the word (chanting of Mantra) one acquires the ability of practising detachment that is the unified soil of knowledge and practices drenched with spiritual bliss.

तृप्ति-10

पीत्वा ज्ञानाऽमृतं भुक्त्वा, क्रियासुरलताफलम्।
साम्यताम्बूलमास्वाद्य, तृप्तिं याति परां मुनिः ॥ १ ॥

सद्ज्ञान रूपी पान अमृत कल्पतरु फल है क्रिया।
पीकर अमी खा फल सुखद ताम्बूल समता का लिया ॥
आस्वाद कर इनका सुहितकर तृप्त बन जाता जिया।
जो तृप्त बनते साधुओं को वंदना करता हिया ॥ १ ॥

ज्ञान रूप अमृत पीकर, क्रिया रूप कल्पलता के फल को खाकर, समभाव रूप ताम्बूल का आस्वाद लेकर साधु अत्यन्त तृप्ति को प्राप्त करता है।

SATIETY

A sadhu acquires a state of satiety on drinking the nectar of knowledge, on eating the fruits of the everlasting tree of right practices and on tasting the betel leaf of equanimity

स्वगुणैरेव तृप्तिश्चेदाकालमविनश्वरी।
ज्ञानिनो विषयैः किं तैर्यैर्भवेत् तृप्तिरित्वरी॥ २॥

ज्ञानादि निज गुण से सदा जो तृप्त बनते श्रुत धरा।
वह तृप्ति रहती है सदा मिट जाती है न कभी जरा॥
उनका न मन विषयों में डूबे तृप्ति जो दे क्षणिक ही।
वे तो परम निज बोध रस में डूबते तृप्ति लही॥ २॥

यदि ज्ञानी को अपने ज्ञानादि गुणों द्वारा ही कभी नष्ट न हो ऐसी तृप्ति होती है तो फिर जिन विषयो के द्वारा स्वल्प काल की ही तृप्ति होती है, उन विषयों का क्या प्रयोजन है।

When a sage reaches a state of euphoria due to his knowledge, why should he seek temporary satiety through material satisfactions.

या शान्तैकरसास्वादाद्भवेत् तृप्तिरतीन्द्रिया।
सा न जिह्वेन्द्रियद्वारा, षड्रसास्वादनादपि॥ ३॥

इस शान्त के आस्वाद से जो अतीन्द्रिय तृप्ति मिले।
मस्तिष्क मन वन सघन उपवन में सरस सरसिज खिले॥
कोई करे आहार षट् रस जीभ से तो भी नहीं।
तृप्ति न वैसी पा सके जो साधु ने तृप्ति लही॥ ३॥

शान्त रस रूप अद्वितीय रस के अनुभव से जो अतीन्द्रिय तृप्ति होती है वह जिह्वेन्द्रिय द्वारा षट् रस के भोजन से भी नही हो सकती।

The transcedental satiety that can be acquired through indulgence in the unique nectar of peace can never be acquired even by a meal which is sumptuous and capable of exciting all the six tastes

संसारे स्वप्नवन्मिथ्या, तृप्तिः स्यादाभिमानिकी।
तथ्या तु भ्रान्तिशून्यस्य, सात्मवीर्यविपाककृत्॥ ४॥

संसार की तृप्ति है मिथ्या स्वप्न सम शास्त्रे कही।
उस तृप्ति से अभिमान क्या करता जरा सोचो सही॥
जिससे बढ़े निज आत्म वीर्योल्लास वो तृप्ति सही।
भ्रम शून्य मिथ्या ज्ञान विरहित परम तृप्ति लहे वही॥ ४॥

संसार में अभिमान मान्यता से प्राप्त हुई तृप्ति स्वप्न की तरह (मिथ्या) होती है। सच्ची तृप्ति तो मिथ्या ज्ञान रहित को ही होती है और वह आत्मा के वीर्य को पुष्ट करने वाली होती है।

In this world the satisfaction derived from conceit is as false as a dream. True satiety comes from shedding illusions and falsehoods and that alone enriches the soul

पुद्गलैः पुद्गलास्तृप्तिं, यान्त्यात्मा पुनरात्मना।
परतृप्तिसमारोपो, ज्ञानिनस्तन्न युज्यते॥ ५॥

आत्मा बने परितृप्त आत्मिक भाव गुण से ही सदा।
पुद्गल बने परितृप्त पुद्गल रूप से ही सर्वदा॥
जो तृप्ति पुद्गल से हो उससे आत्म निज तृप्ति वरे।
पर द्रव्य का पर द्रव्य में आरोप ज्ञानी ना करे॥ ५॥

पुद्गलो के द्वारा पुद्गल तृप्ति प्राप्त करते हैं और आत्मा गुणो के द्वारा आत्मा तृप्त होती है। इस कारण से पुद्गल तृप्ति में आत्म-तृप्ति घटित नही होती ऐसा ज्ञानियो का अनुभव है।

Material particles can derive satisfaction only through material particles and the soul attains satisfaction by gaining the virtues of the soul. Thus the all knowing sadhu never expects to achieve satisfaction of the soul through material gains

मधुराज्यमहाशाकाऽग्राह्ये ब्राह्ये च गोरसात्।
परब्रह्माणि तृप्तिर्या जनास्तां जानतेऽपि न॥ ६॥

घी शाक उत्तम फलादिक से पयादिक से भिन्न है।
पर ब्रह्म में जो तृप्ति है वह तृप्ति पर अवच्छिन्न है॥
उस तृप्ति की अनुभूतियाँ नर अज्ञ कैसे पा सकें।
पर द्रव्य आसक्ति मिटे तो तृप्ति अनुभव रस चखे॥ ६॥

सुन्दर राज्य में बड़ी आशा जिनको है ऐसे पुरुषों द्वारा प्राप्त न हो सके ऐसे वाणी से अगोचर परमात्मा के विषय में जो तृप्ति होती है उसे लोक जानते भी नहीं हैं।

The satiety acquired from the transcendental is indestructible and inexplicable. Those who crave for fruits, honey milk, Kingdom etc, cannot even conceive that satiety that is beyond words.

विषयोर्मिविषोद्गारः, स्यादतृप्तस्य पुद्गलैः।
ज्ञानतृप्तस्य तु ध्यानसुधोद्गारपरम्परा ॥ ७ ॥

अतृप्त है जो पुद्गलों से विषय विष उद्गार है।
जो तृप्त होते ज्ञान अमृत ध्यान का ही डकार है॥
अन्तर बडा है विष सुधा का छोड़ पुद्गल संग अब।
निज ज्ञान मस्ती में रहो हो प्राप्त तृप्ति परम तब ॥ ७ ॥

पुद्गलो के परिभोग से अतृप्त ऐसे (मनुष्यो को) विषय के तरंग रूप जहर का उद्गार (डकार) प्रकट होता है। ज्ञान से तृप्त साधकों को तो ध्यान रूप अमृत के उद्गार (डकार) की परम्परा होती है।

Those who are satiated by the material aspect of life spit only the venom of physical desires but the all knowing sadhus who survive on the nectar of knowledge incessantly exude the nectar of meditation

सुखिनो विषयातृप्ता, नेन्द्रोपेन्द्रादयोऽप्यहो।
भिक्षुरेकः सुखी लोके, ज्ञानतृप्तो निरंजनः॥ ८॥

इन्द्रादि भी न सुखी रहे जो विषय रस में डूबते।
इन्द्रिय विषय रस भोगते अतृप्ति में सब खूंचते॥
जो ज्ञान से परितृप्त है अंजन रहित मल रहित है।
इस लोक में बस वे ही भिक्षु तृप्त है सुख सहित है॥ ८॥

विषयों से अतृप्त इन्द्र उपेन्द्र आदि भी सुखी नुही हैं यह आश्चर्य है। जगत में ज्ञान से तृप्त कर्ममल रहित ऐसा एक साधु ही सुखी है।

The king of gods, Indra, etc, who are seeped in the physical luxuries, too, cannot experience the bliss which a common sadhu seeped in knowledge can do so easily

निर्लेप-11

संसारे निवसन् स्वार्थसज्जः कज्ज्लवेश्मनि।
लिप्यते निखिलो लोको, ज्ञानसिद्धो न लिप्यते॥ १ ॥

कज्जल गृहादि स्वरूप जग में स्वार्थ से सब लिप्त हैं।
कभी राग में कभी द्वेष में कभी काम में उद्दीप्त हैं॥
पर ज्ञान सिद्ध मुनीश तो नहिं लिप्त होता है कभी।
संसार में रहते हुए निर्लिप्त रहते मुनि सभी॥ १ ॥

काजल के घर समान संसार में रहता हुआ स्वार्थ से युक्त सारा लोक कर्म से लिप्त होता है जबकि ज्ञान से परिपूर्ण जीव (ऐसे संसार में रहता हुआ भी) लिप्त नही होता।

UNTARNISHED

In this world which is like a house of kohl (kajal), everyone remains enmeshed in the kohl of selfishness Only those with true knowledge manage to remain untouched

नाऽहं पुद्गलभावानां, कर्ता कारयिताऽपि न।
नानुमन्ताऽपि चेत्यात्मज्ञानवान् लिप्यते कथम्॥ २ ॥

पुद्गल स्वरूपी भाव का कर्त्ता नहीं कारक नहीं।
अनुमोदना करता नहीं जड़ भाव का धारक नहीं॥
मैं ज्ञान रूपी चेतना हूँ लिप्त मैं होता नहीं।
ऐसा हो चिंतन साधु का,तो लिप्त कैसे हो सही॥ २ ॥

पौद्गलिक भावो का न मै करने वाला हूँ, न कराने वाला हूँ और न मैं इसका अनुमोदन करने वाला हूँ ऐसा चिंतन करने वाला आत्म ज्ञानी कैसे लिप्त हो सकता है।

An enlightened soul who realizes that the self is neither the initiator nor the doer or promoter of any physical activity and that it is simply pure consciousness, such a soul always remains untouched by the physical world

लिप्यते पुद्गलस्कन्धो, न लिप्ये पुद्गलैरहम्।
चित्रव्योमाञ्जनेनेव, ध्यायन्निति न लिप्यते॥ ३॥

हो लिप्त पुद्गल स्कंध पुद्गल से नहीं मैं लिप्त हूँ।
निर्लिप्त हूँ श्रुतवान् हूँ, निज भाव से परितृप्त हूँ॥
ज्यों वर विचित्रित व्योम अंजन से न होता लिप्त है।
जो ध्यान ऐसा करे साधु रहे सदा निर्लिप्त है॥ ३॥

पुद्गलों का स्कंध (ही) पुद्गलो द्वारा लिप्त होता है, मैं नही। जिस प्रकार अञ्जन के द्वारा विचित्र आकाश (लिप्त नही हो सकता वैसे)। इस प्रकार ध्यान करने वाला आत्मा लिप्त नही होता।

A sadhu who constantly meditates on the thought that he is as unaffected by the material existence as is the sky by kohl and that he is satisfied with self realization, such a man is never touched by the material world

लिप्तता ज्ञानसम्पातप्रतिघाताय केवलम् ।
निर्लेपज्ञानमग्नस्य, क्रिया सर्वोपयुज्यते ॥ ४ ॥

हो भान ऐसा आतमा निर्लिप्त रहता है सदा ।
उसी क्रिया उपयोग सम परिणाम रहता सर्वदा ॥
ना लिप्तता का ज्ञान आवे रोकती उसको क्रिया ।
शुभ ध्यान योगी साधु का निर्लिप्त रहता है जिया ॥ ४ ॥

"आत्मा निर्लेप है" ऐसे निर्लेप ज्ञान मे मग्न आत्मा को सभी आवश्यक आदि क्रियाएँ केवल "आत्मा कर्मबद्ध है" ऐसे लिप्तता के ज्ञान के आगमन को रोकने के लिये उपयोगी बनती है ।

The utility of the ascetic practices lies in countering the knowledge that as a living being the soul is tethered with karma, and so tarnished. So that the Yogi may transcend into the state of being untouched or of pure meditation.

तपः श्रुतादिना मत्तः, क्रियावानपि लिप्यते।
भावनाज्ञानसम्पन्नो, निष्क्रियोऽपिं न लिप्यते॥ ५॥

तप मद भरा श्रुत मद भरा आवश्यकी किरिया करे।
वह लिप्त होता ही रहे अति भार कर्मों का भरे॥
पर भावना श्रुत युक्त जो किरिया नहीं करता भले।
वह कर्म से निर्लिप्त रहता भाव शुद्धान्तस्तले॥ ५॥

तप और श्रुत आदि से अभिमानी बना आत्मा क्रियावान होने पर भी वह लिप्त होता है। भावना ज्ञान से संपन्न आत्मा क्रियारहित होने पर भी लिप्त नही होता।

A soul indulging in ascetic practices and proud of his knowledge and diligence remains deeply affected by the material world, whereas a soul, though inactive as regards ritual practices but rich in empathy and knowledge manages to remain unaffected by the material world.

अलिप्तो निश्चयेनात्मा, लिप्तश्च व्यवहारतः।
शुद्धयत्लिप्तया ज्ञानी, क्रियावान् लिप्तया दृशा ॥ ६ ॥

व्यवहार नय से शुद्ध चेतन कर्म से अतिलिप्त है।
निश्चय दशा से चेतना तो सर्वथा निर्लिप्त है॥
श्रुतवान ध्यान प्रयोग से निर्लिप्त दृष्ट्या शुद्ध हो।
जो है क्रियाधर साधु किरिया लिप्त दृष्ट्या बुद्ध हो ॥ ६ ॥

निश्चय नय से जीव कर्म से बद्ध नही है लेकिन व्यवहार नय से जीव कर्म से बद्ध है। ज्ञानी अलिप्त दृष्टि से और क्रियावान लिप्त दृष्टि से शुद्ध होता है।

From the viewpoint of ultimate reality the soul is pure or untarnished From the conventional or mundane viewpoint it is infested with karma, or tarnished. Thus the all knowing sage is pure in terms of ultimate reality but the ascetic indulging in ritual practices is pure only from the conventional viewpoint

ज्ञानक्रियासमावेशः, सहैवोन्मीलने द्वयोः।
भूमिकाभेदतस्त्वत्र, भवेदेकैकमुख्यता ॥ ७ ॥

दोनों ही दृष्टि साथ हो तो ज्ञान श्रुत की एकता।
पर भूमिका के भेद से हो अलग अपनी मुख्यता ॥
शुभ ध्यान की वरदा दशा में ज्ञान की है मुख्यता।
व्यवहार की सुखदा दशा में है क्रिया की प्रमुखता ॥ ७ ॥

दोनों दृष्टियाँ एक साथ खुलने पर ज्ञान और क्रिया की एकता है। यहाँ ज्ञान क्रिया में गुणस्थान रूप अवस्था के भेद से एक-एक की मुख्यता होती है।

Looking from both these view points simultaneously there is a unison of knowledge and ascetic practices at the highest level of purity. But each one gains prominence at different levels of purity (The Gunasthanas).

सद्ज्ञानं यदनुष्ठानं, न लिप्तं दोषयङ्कतः।
शुद्धबुद्धस्वभावाय, तस्मै भगवते नमः ॥ ८ ॥

सद्ज्ञान संयुत भाव वर अनुष्ठान किरिया हो सही।
वह शुद्ध किरिया दोष रूपी पंक से निर्लिप्त ही ॥
ऐसे परम निर्मल विमल शुभ शुद्ध वर भगवंत को।
ज्ञान स्वरूपी श्रुत स्वभावी वंदना शिवकंत को ॥ ८ ॥

ज्ञान सहित जिसका क्रिया रूप अनुष्ठान दोष रूप कचरे से लिप्त नहीं है ऐसे और शुद्ध बुद्ध ज्ञान रूप सवभाव वाले भगवन्त को नमस्कार हो।

Salutations to the pure, emancipated, all knowing Lord who is the embodiment of unambiguous knowledge and whose action is free of any garbage of ritualistic activity.

निःस्पृह–12

स्वभावलाभात् किमपि, प्राप्तव्यं नाऽवशिष्यते।
इत्यात्मैश्वर्यसम्पन्नो, निःस्पृहो जायते मुनिः ॥ १ ॥

निज शुद्ध चेतन आत्म भाव लहुं लहुं तल्लीनता।
कुछ और न मुझे चाहिये चाहुं स्वभाव अदीनता॥
ऐसा परम निर्मल सहज शुभ सरल जो अणगार है।
निज आत्म का ऐश्वर्य पा निस्पृह करे भवपार हैं॥ १ ॥

आत्म स्वभाव की प्राप्ति के अलावा और कुछ भी प्राप्त करने योग्य शेष नहीं रहता, इस प्रकार के आत्म-ऐश्वर्य से सम्पन्न साधु निःस्पृह होता है।

The Detached

One who is steadfastly pursuing self-realization, for him nothing else matters and thus he is nonchalant towards the material world.

संयोजितकरैः के के, प्रार्थयन्ते न स्पृहावहैः।
अमात्रज्ञानपात्रस्य, निःस्पृहस्य तृणं जगत्॥ २॥

निस्पृह नहीं वे हाथ जोड़ी द्वार हर पर मांगते।
किस किसके आगे प्रार्थना करते हुए वे याचते॥
सद्ज्ञान की सीमा नहीं वे साधु गण धन धन्य है।
जग सकल निस्पृह साधु गण को लगे समतृण वन्य है॥ २॥

स्पृहावान् पुरुष हाथ जोड़कर किस-किसके आगे प्रार्थना नही करते ? जबकि अपरिमित ज्ञान के पात्र निःस्पृह साधु के लिये सारा जगत तृण समान होता हैं।

For the nonattached, nonchalant sadhu the material world is not worth a straw. Whereas those with desires move without any qualms from door to door in search of alms.

छिन्दन्ति ज्ञानदात्रेण, स्पृहाविषलतां बुधाः।
मुखशोषं च मूर्च्छां, दैन्यं यच्छति यत्फलम्॥३॥

विष तरु स्पृहा है दैन्यता मुख शोष मूर्च्छा फल विकट।
ज्यों जहर भक्षण के ये फल है स्पृहा भी है जहर घट॥
पंडित चतुर श्रुत शस्त्र से विष वेल स्पृहा को छेदते।
निस्पृह बने निष्काम हो निज आत्म अनुभव वेदते॥ ३॥

मुखशोष (मुँह का सूखना), मूर्च्छा और दीनता रूप फल देने वाली लालसा रूप विषलता को अध्यात्म ज्ञानी पंडित लोग ज्ञान रूप हॉसिये छेदते हैं।

Attachment is like a poison-tree under which one gets a parched mouth and unconciousness Therefore the Enlightened fell this tree of attachment with the axe of knowledge and they prefer to remain non-attached and nonchalant

निष्कासनीया विदुषा, स्पृहा चित्तगृहाद् बहिः।
अनात्मरतिचाण्डालीसङ्ग-मङ्गी-करोति या ॥ ४ ॥

जो आत्म से है भिन्न पुद्गल रति समागम चाहती।
चांडालिनी रति का समागम ये स्पृहा यों मांगती॥
ऐसी स्पृहा मन रूप घर से बाह्य करने योग्य है।
साधक मुनि ज्ञानी कहे नित स्पृहा योग्य न भोग्य है ॥ ४ ॥

विद्वान्*पुरुषों के द्वारा तो मन रूप घर से तृष्णा बाहर निकालने योग्य है। जो तृष्णा आत्मा से भिन्न पुद्गलों में रति रूप चांडालिनी का संग अंगीकार करती है।

The Sadhus with self-realization do not let attachment touch their hearts. They shun it as if it were the femme fatale herself

स्पृहावन्तो विलोक्यन्ते, लघवस्तृणतूलवत्।
महाश्चर्यं तथाप्येते, मज्जन्ति भववारिधौ॥ ५॥

तृण आक सम हलके हैं फिर भी स्पृहाकारक डूबते।
करते स्पृहा जो वे सदा भव वारि में गल डूबते॥
हलका हमेशा तैरता फिर डूबते ये क्यों सदा।
आश्चर्य है पर ये स्पृहा देती डूबोती सर्वदा॥ ५॥

स्पृहावान् पुरुष तृण और आक की रूई के समान हल्के दिखते हैं फिर भी संसार समुद्र मे डूब जाते है, यह आश्चर्य है।

It is astonishing how those who are attached appear to be as light as straw or perhaps puffs of cotton wool, and yet they get drowned; drowned in their attachments Such indeed is the characteristic of attachment

गौरवं पौरवन्द्यत्वात्, प्रकृष्टत्वं प्रतिष्ठया।
ख्यातिं जातिगुणात्स्वस्य, प्रादुष्कुर्यान्न निःस्पृहः ॥ ६ ॥

जो है स्पृहा विरहित मुनि वो यों कभी कहता नहीं।
अपनी प्रतिष्ठा ख्याति अपने शब्द से करता नहीं॥
मैं उच्च जातिवान हूँ मैं पूज्य हूँ पुर के लिये।
मैं हूँ प्रतिष्ठित और मैने काम क्या कितने किये॥ ६ ॥

स्पृहा रहित साधु नगरवासियों द्वारा वन्दनीय होनें पर भी अपना बड़प्पन, अपनी प्रतिष्ठा, ख्याति और उत्तम जातीयता आदि गुणों से अपनी प्रसिद्धि प्रकट नही करे।

A sage who is truly detached never blows his own trumpet and never shows off his fame or talents even though he is praised and revered by the townsfolk

भूशय्या भैक्षमशनं, जीर्णं वासो वनं गृहम्।
तथापि निःस्पृहस्याऽहो, चक्रिणोऽप्यधिकं सुखम्॥७॥

पृथ्वी ही शय्या है जिसे आहार लेते मांगकर।
धारे पुराने जीर्ण कपड़े मानते वन को ही घर॥
निस्पृह मुनीश्वर चक्रवर्ती से भी ज्यादा है सुखी।
सबको स्पृहा ही करती नर नरपति विभवपति को दुखी॥७॥

स्पृहा रहित साधु के लिये पृथ्वी रूप शय्या है, भिक्षा मे जो मिला वह भोजन है, फटे पुराने वस्त्र और वनरूप घर है फिर भी आश्चर्य है कि चक्रवर्ती से भी ज्यादा उन्हें सुख है।

Those who are detacned enough to consider the earth their bed and who live by whatever is given to them to eat or wear are happier than even the king of kings who is caught in a myriad of miseries caused by attachment

परस्पृहा महादुःखं, निःस्पृहत्वं महासुखम्।
एतदुक्तं समासेन, लक्षणं सुखदुःखयोः ॥८॥

पर पुद्गलेच्छा वस्तु इच्छा जगत में दुख रूप है।
इच्छा विरक्ति निस्पृहा धारे बने निजभूप है॥
सुख दुःख का लक्षण यही संक्षेप से मैंने कहा।
इच्छा अनिच्छा में निजातम भाव दुख सुख का रहा॥ ८॥

पर की आशा-लालसा करना यह महादुःख है और निःस्पृहत्व महासुख है, यही संक्षेप में सुख और दुःख का लक्षण कहा है।

A desire for the material benefits is the prime cause of misery and detachment is the cause of happiness. This in a nutshell, is the true reason for unhappiness and happiness.

मौन–13

मन्यते यो जगत्तत्वं, स मुनिः परिकीर्तितः।
सम्यक्त्वमेव तन्मौनं, मौनं सम्यक्त्वमेव च॥ 1 ॥

जो जानता है जगत के तत्त्वों को मुनि उसको कहा।
सम्यक्त्व ही मुनिधर्म है, मुनिधर्म को समकित कहा॥
मुनि धर्म समकित एक है जो जान लेता है जगत।
निज धर्म में निज चेतना में साधु हो जाता है रत॥ 1 ॥

जो जगत के स्वरूप को जानता है उसी को मुनि कहा जाता है इसलिए सम्यक्त्व ही मुनित्व है और मुनित्व ही सम्यक्त्व है।

SAGEHOOD

One who realizes the true nature of life and mater on this earth is called a 'Muni'. Thus the state of a muni (sagehood) is synonymous with righteousness.

आत्माऽऽत्मन्येव यच्छुद्धं, जानात्यात्मानमात्मना।
सेयं रत्नत्रये ज्ञप्तिरुच्याचारैकता मुनेः ॥ 2 ॥

आत्मा जो जाने आतम से अरु आतम में शुद्ध आतमा।
चारित्र दर्शन ज्ञान रत्नत्रयी निधान करे जमा॥
रत्नत्रयी में साधु को हो भेद विरहित परिणति।
एकत्व होता रत्न त्रय में ऐसा साधु महाव्रती ॥ 2 ॥

आत्मा आत्मा में ही शुद्ध आत्मा को आत्मा के द्वारा जानता है ऐसी ज्ञान, दर्शन और चारित्र रूप रत्नत्रयी मे श्रद्धा और आचार की अभेद परिणति मुनि को होती है।

The soul realizes the inherent purity of soul through the natural activity of soul. Such is the sublime fused state of the trilogy of knowledge, perception and conduct. Such a fusion manifests itself in a true sage.

चारित्रमात्मचरणाद्, ज्ञानं वा दर्शनं मुनेः।
शुद्धज्ञाननये साध्यं, क्रियालाभात् क्रियानये ॥ 3 ॥

शुद्ध ज्ञान नय से ज्ञान दर्शन चरण ऐसे साध्य है।
जो आत्म में रमता सदा आत्मा परम आराध्य है॥
जो शुद्ध किरिया करे नय किरिया से त्रिपुटी प्राप्त है।
जो शुद्ध संयम पालते तिरते कहें यो आप्त है॥ 3 ॥

आत्मा में आचरण से चरित्र है ऐसे शुद्ध ज्ञान नय के अभिप्राय से ज्ञान और दर्शन मुनि के साध्य हैं।

क्रिया नय के अभिप्राय से ज्ञान के फल रूप क्रिया के लाभ से साध्य रूप है।

True conduct is delving in the soul. From the view point of such pure knowledge the goal of a sage is perception and knowledge. From the view point of action the goal is the benefits drawn from the actions guided by pure knowledge.

यतः प्रवृत्तिर्न मणौ, लभ्यते वा न तत्फलम्।
अतात्त्विकी मणिज्ञप्तिर्मणिश्रद्धा च सा यथा॥ 4 ॥

मणि प्राप्ति की न प्रवृत्ति है न प्रवृत्ति का परिणाम है।
"मणि है यही" यह ज्ञान श्रद्धा झूठ है निष्काम है॥
जो जानकर उपलब्ध करने की प्रवृत्ति को करे।
कर प्राप्त कर उपयोग श्रद्धा ज्ञान सत्य हृदय भरे॥ 4 ॥

जिससे न तो मणि में प्रवृत्ति हो और न उस प्रवृत्ति का फल प्राप्त होता हो ऐसे अवास्तविक मणि का ज्ञान और मणि की श्रद्धा जैसी होती है।

As the knowledge of and faith in a non-existent jewel neither inspires one to obtain it nor can it be obtained.

तथा यतो न शुद्धात्मस्वभावाऽऽचरणं भवेत्।
फलं दोषनिवृत्तिर्वा, न तद् ज्ञानं न दर्शनम्॥ 5॥

जिससे निजातम शुद्ध निजभावों में हो ना रमणता।
अथवा निवृत्ति दोष की ना हो जरा भी शुद्धता॥
परिणाम कुछ भी हो नहीं, वह ज्ञान कैसा है सही।
आभास दर्शन ज्ञान का पर ज्ञान दर्शन है नहीं॥ 5॥

वैसे ही जिससे शुद्ध आत्म-स्वभाव का आचरण अथवा दोष निवृत्ति रूप फल नही मिलता वह न तो ज्ञान है और न दर्शन है।

Similarly, that which does not lead to pursuits of the self or purification of inner faults is neither true perception nor true knowledge.

यथा शोफस्य पुष्टत्वं, यथा वा वध्यमण्डनम्।
तथा जानन्भवोन्मादमात्मतृप्तो मुनिर्भवेत्॥ 6 ॥

संसार है कैसा कुरूपी जानता है मुनि प्रवर।
ज्यों पुष्टता सूजन तथा मानित बने वध योग्य नर॥
संसार के उन्माद भावों को मुनि पहचानता।
पहिचान कर जिन आत्म भाव प्रदेश रस नित चाखता॥ 6 ॥

जिस प्रकार सूजन आ जाने से पुष्ट हो जाने की कल्पना करे अथवा वध करने योग्य पुरुष को माला पहनाने से वह गौरव की कल्पना करे। संसार का उन्माद ऐसा ही है इसलिए ऐसे उन्माद को जानने वाले मुनि आत्मा के विषय में संतुष्ट रहते हैं

Just like a flabby body need not be healthy and a garlanded man, prepared for the sacrificial altar, is not to be envied, so a sage knows that this vivacious world is actually full of miseries and thus he remains content with his soul and his 'self'.

सुलभं वागनुच्चारं मौनमेकेन्द्रियेष्वपि।
पुद्गलेष्वप्रवृत्तिस्तु, योगानां मौनमुत्तमम्॥ 7 ॥

वाणी नहीं उच्चारना यह मौन का नहिं अर्थ है।
इस मौन में एकेन्द्रियादि जीव पूर्ण समर्थ है॥
जो पुदग्लों में योगत्रय की निवृत्ति को धारते।
वह मौन सच्चा मौन है आगे सभी अघ हारते॥ 7 ॥

वाणी का उच्चारण नही करने रूप मौन एकेन्द्रियों को भी सुलभ है लेकिन पुद्गलों में मन वचन काया की अप्रवृत्ति ही श्रेष्ठ मौन कहलाता है।

To not to utter the spoken word is not true speechlessness. For even the unicellular organisms are adept at that. Observance of true speechlessness is effected through non-indulgence in matter (anything other than self) by all the three modes-mind, speech and body.

ज्योतिर्मयीव दीपस्य, क्रिया सर्वापि चिन्मयी।
यस्याऽनन्यस्वभावस्य, तस्य मौनमनुत्तरम्॥ 8 ॥

ज्यों दीप की सारी क्रिया ज्योतिर्मयी होती सदा।
लौ जाय ऊंची इधर तो भी तम हटावे सर्वदा॥
त्यों अन्य भाव विभाव में परिणमित जो मुनि है नहीं।
अणगारता उसकी परम उत्कृष्ट शास्त्रों में कही॥ 8 ॥

जिस प्राकर दीपक की सभी क्रियाएँ, (ज्योति का ऊंचा नीचा आडा टेढा होना) प्रकाशमय होती है उसी प्रकार अन्य स्वभाव में अपरिणत जिस आत्मा की सभी क्रियायें ज्ञानमय है उसका मुनित्व सर्वोत्कृष्ट है।

Just like a lamp, with its flame in no matter which direction or position, always emits light, so a sage well established in the knowledge of his soul spreads knowledge no matter what he says or does.

विद्या-14

नित्यशुच्यात्मताख्यातिरनित्याशुच्यनात्मसु।
अविद्या तत्त्वधीर्विद्या, योगाचार्यैः प्रकीर्तिता॥ 1 ॥

जो पुद्गलों में नित्यता शुचितात्मता को मानता।
जो आत्म में विपरीत इसके भाव को पहिचानता॥
उस बुद्धि को कहते अविद्या योग के आचार्य हैं।
शुद्ध आत्म में नित्यादि में विद्या परम स्वीकार्य है॥ 1 ॥

अनित्य मे नित्य की, अशुचि मे शुचि की और आत्मा से भिन्न पुद्गलादि में आत्मत्व बुद्धि अविद्या कहलाती है तथा यथार्थ तत्त्व की बुद्धि विद्या कहलाती है ऐसा योगाचार्यो का कथन है।

EDUCATION

One who recognizes permanence in impermanence, purity in impurity and the soul element in particles devoid of it, such a one is supposed to be educated.

Educated are those whose intellect is always directed towards the study of true reality or the soul. Thus say the masters of yoga

यः पश्यन्नित्यमात्मानमनित्यं परसङ्गमम्।
छलं लब्धुं न शक्नोति, तस्य मोहमलिम्लुचः ॥ 2 ॥

निज आत्म के अविनाश रूप स्वरूप को जो देखता ।
पर वस्तु के संबंध को नश्वर स्वरूपे देखता॥
उस शुद्ध ज्ञान विधान में छल प्राप्त करना शक्य ना।
छल प्राप्ति में यह मोह रूपी चोर होत समर्थ ना ॥ 2 ॥

जो आत्मा को सदा नित्य देखता है और पर वस्तु के सम्बन्धों को अनित्य देखता है उसके छिद्र प्राप्त करने में मोह रूप चोर समर्थ नही हो सकता।

Those who recognize the indestructibility of the soul and the ephemeral nature of the material world are truly knowledgeable. Fondness, the thief, is incapable of finding holes in the character of such people and cannot seep into them.

तरङ्गतरलां लक्ष्मीमायुर्वायुवदस्थिरम्।
अदभ्रधीरनुध्यायेदभ्रवद्भङ्गुरं वपुः ॥ 3 ॥

निपुणज्ञ धन को चपल माने ज्यों समुद्र तरंग है।
अस्थिर उमर है वायु सम बादल समा वपु अंग है॥
बादल विनाशी तन विनाशी उम्र धन भी स्थिर नहीं।
हो चिंतना तो आत्म को हो जन्म लेना फिर नहीं॥ 3 ॥

निपुण बुद्धि वाला लक्ष्मी को समुद्री-तरंगों के समान चंचल, आयुष्य को वायु के समान अस्थिर और शरीर को बादल के समान नश्वर विचारता है।

An intelligent person considers Laxmi, the goddess of wealth, to be as frivolous as the sea-waves; the life span as unpredictable as the wind, and the body as transitory as the clouds.

शुचीन्यप्यशुचीकर्तुं, समर्थेऽशुचिसम्भवे।
देहे जलादिना शौचभ्रमो मूढस्य दारुणः ॥ 4 ॥

उत्पन्न अशुचि में हुआ इस देह का क्या अर्थ है।
शुचि तत्त्व को अपवित्र करने में ये काय समर्थ है॥
फिर भी पुरुष हो मूढ़ जल से साफ करता है सदा।
अपवित्र है पर पवित्रता का भ्रम भयंकर हो तदा॥ 4 ॥

पवित्र पदार्थ का अपवित्र करने में समर्थ और अपवित्र पदार्थ में उत्पन्न ऐसे शरीर को पानी आदि से पवित्र करने का मूढ आत्माओ का भ्रम भयंकर है।

The superstitious belief of such fools who think they can transform pure substances into impure substances and impure physical bodies into pure states just by sprinkling water or some such substance, is a dangerous thing.

यः स्नात्वा समताकुण्डे, हित्वा कश्मलजं मलम्।
पुनर्न याति मालिन्यं, सोऽन्तरात्मा परः शुचिः ॥ 5 ॥

सम रूप कुंडे स्नान करके पाप मल धोता सदा।
फिर शुद्ध आत्म मलीनता को प्राप्त ना होता कदा ॥
वह अंतरात्मा है परम पावन अमल निर्मल बना।
कर शुद्ध तूं रख शुद्ध तूं निज आत्म को अब हे मना ॥ 5 ॥

जो समता रूप कुण्ड मे स्नान करके पाप से उत्पन्न मैल का त्याग कर दुबारा मलिन नही होता, वह अन्तरात्मा परम पवित्र है।

Those who wash away their sins in the tub full of equanimity and never become unclean again are possessed of a pure soul

आत्मबोधो नवः पाशो, देहगेहधनादिषु।
यः क्षिप्तोऽप्यात्मना तेषु, स्वस्य बन्धाय जायते ॥ 6 ॥

तन गृह धनादिक में हो बुद्धि स्वत्व का निज भाव हो।
यह बुद्धि ही बंधन नवीन स्वभाव में परभाव हो॥
यह पाश बंधन आत्म ने तन आदि में डाला वही।
वह आत्म का बंधन बने निश्चय बने तन का नहीं॥ 6 ॥

शरीर, घर और धन आदि में आत्मत्व की बुद्धि एक नया बंधन है। शरीर आदि में आत्मा द्वारा डाला गया यह बंधन उस आत्माके बंध के लिये हो जाता है।

In the material aspects of life e.g. the body, the home, wealth etc intelligence helps one realize the difference between the material and the 'self'. But the same intelligence when it identifies itself with the material possessions acts as an impediment and a yoke in the context of the soul, for intelligence is the material aspect of the 'self'.

मिथो युक्तपदार्थनामसङ्क्रमचमत्क्रिया।
चिन्मात्रपरिणामेन, विदुषैवाऽनुभूयते ॥ 7 ॥

जो जीव पुद्गल तत्त्व हमको एक जैसे ही लगे।
है अलग लेकिन मोहवश निंदिया हमारी ना भगे॥
जड़ चेतना की भिन्नता रूपी चमत्कृति भान है।
अनुभव करे जो ज्ञान परिणति-वान है विद्वान् है ॥ 7 ॥

परस्पर संयुक्त बने जीव-पुद्गलादि पदार्थों का भिन्नता रूप चमत्कार एक विद्वान् के द्वारा ही ज्ञान मात्र परिणाम से अनुभव किया जाता है।

The soul appears to be very much a part of the body but that is just an illusion; for the soul element and the body element are astonishingly and vastly different and those who recognize this are truly knowledgeable.

अविद्यातिमिरध्वंसे, दृशा विद्याञ्जनस्पृशा।
पश्यन्ति परमात्मानमात्मन्येव हि योगिनः ॥ 8 ॥

जब तम तिमिर अज्ञान का हो नाश तब योगी प्रवर।
तब तत्त्व बुद्धि रूप अंजन दृष्टि होती स्पर्शकर ॥
उस दृष्टि से निज आत्म में परमात्म का अनुभव करे।
विद्या नहीं जग में तिमिर हर आत्म श्रुत किरणें भरे ॥ 8 ॥

अज्ञान रूप अंधकार का नाश होने पर विद्या रूप अंजन को स्पर्श करने वाली दृष्टि से योगीजन अपनी आत्मा में ही परमात्मा का दर्शन करते है।

When the darkness of ignorance dies the kohl of knowledge sharpens the vision enabling the yogi to perceive the almighty in his soul

विवेक-15

कर्मजीवं च संश्लिष्टं, सर्वदा क्षीरनीरवत्।
विभिन्नीकुरुते योऽसौ, मुनिहंसो विवेकवान्॥ 1 ॥

ज्यों दूध जल को अलग करता हंस प्राणी सर्वदा।
त्यों कर्म चेतन को अलग करते मुनीश्वर हो मुदा।
वे साधु कहलाते जगत में हंस सम निर्मल विमल।
ज्ञानी विवेकी साधु वे होते रहित अघ कर्म मल॥ 1 ॥

हमेशा दूध और पानी के समान मिले हुए जीव और कर्म को जो मुनि रूप हंस अलग करता है वही विवेकी है।

THE CAPACITY TO DISCERN

The swan like Muni who separates the Being and Karma which are mixed like milk and water, truly is the discerning sage.

देहाऽऽत्माद्यविवेकोयं, सर्वदा सुलभो भवे।
भवकोट्यापि तद्भेदविवेकस्त्वतिदुर्लभः ॥ 2 ॥

जड़ चेतना तन आतमा का भेद होता नष्ट है।
अविवेक ऐसा प्राप्त हो सुख से न इसमें कष्ट है॥
लेकिन इसी का भेद ज्ञान विज्ञान दुर्लभ है परम।
तन जीव भेद विवेक ना मिलता मिले कोटि जनम ॥ 2 ॥

संसार में देह और आत्मा का अभेद रूप अविवेक सर्वदा सुलभ है जबकि उसका भेद ज्ञान कोटि भवो द्वारा भी प्राप्त नही होता अर्थात् अति दुर्लभ है।

It is easy to find the ill-concept that there is no distinction between the body and the soul, whereas the conscientious knowledge that the two are diverse elements comes only after infinite stages of spiritual evolution.

शुद्धेऽपि व्योम्नि तिमिराद्, रेखाभिर्मिश्रता यथा।
विकारैर्मिश्रता भाति, तथाऽऽत्मन्यविवेकतः ॥ 3 ॥

आकाश है सुविशुद्ध पर तम रेख से मिश्रित लगे।
नीलादि रेखाएँ हमारे नेत्र को मन को ठगे॥
अविवेक कारण से निजात्म विकास से मिश्रित लगे।
खुल जाय दृष्टि विवेक की तो भाव शुद्धातम जगे ॥ 3 ॥

जिस प्रकार तिमिर रोग होने से स्वच्छ आकाश में भी नील पीत रेखाओं द्वारा मिश्रत्व भासित होता है उसी प्रकार आत्मा में अविवेक के कारण से विकारों द्वारा मिश्रत्व भासित होता है।

Just as night blindness results in sighting dark lines even in a clear blue sky, likewise due to non conscientious behaviour and thoughts the soul appears to be tarnished & corrupted when in reality that is just an illusion.

यथा योधैः कृतं युद्धं, स्वामिन्येवोपचर्यते।
शुद्धात्मन्यविवेकेन, कर्मस्कन्धोर्जितं तथा॥ 4 ॥

योद्धा करे जो युद्ध पर दायित्व उसका स्वामि पर।
जय हो अगर हो हार तो भी जिम्मेदारी नृपति पर॥
अविवेक ने जो कर्म पुद्गल फल विलास किया सदा।
परिणाम उसका भोगती है आतमा ही सर्वदा॥ 4 ॥

सैनिकों द्वारा युद्ध करने पर भी राजा मे ही उसका अरोपण होता है वैसे ही अविवेक द्वारा कर्म स्कंध का पुण्य पाप रूप फल शुद्ध आत्मा में ही आरोपित होता है।

Though its the soldiers who fight in a battle the onus falls on the king, likewise the fruits of the ill effects caused by non-conscientious acts are borne by the soul.

इष्टकाद्यपि हि स्वर्णं, पीतोन्मत्तो यथेक्षते।
आत्माऽभेदभ्रमस्तद्वद्देहादावविवेकिनः ॥ 5 ॥

पीकर बना उन्मत्त उसको इंट भी सोना दिखे।
क्या सत्य है मिथ्या है क्या वो क्या पढ़े वो क्या लिखे ॥
अविवेकधारी जीव माने देह को ही आतमा।
रे नर ! अभी तक खूब तूं अविवेक के कारण भमा ॥ 5 ॥

धतूरे का पान करने से उन्मादी जीव जिस प्रकार ईंट आदि को भी सोना मान लेता है ठीक उसी प्राकर अविवेकी को जड़ शरीर आदि में आत्मा के अभेद का भ्रम हो जाता है।

To one in a stupor even a brick could appear to be one made of gold as he is incapable of discerning reality from unreality. Such illusions are the lot of unconscientious people who confuse the body for the soul.

इच्छन्न परमान् भावान् विवेकाद्रेःपतत्यधः।
परमं भावमन्विच्छन्नाऽविवेके निमज्जति ॥ 6 ॥

इच्छा नहीं है मैं परम शुद्ध भाव को पाऊं मुदा।
वह शुद्ध भाव विवेक गिरि से गिरे नीचे सर्वदा॥
जो चाहता मन में सदा हर पल परम निज भाव को।
अविवेक में पड़ता नहीं वह प्राप्त कर शिवछांव को ॥ 6 ॥

परमभाव अर्थात् आत्मा के शुद्ध गुणों को नही चाहने वाला आत्मा विवेक रूप पर्वत से नीचे गिर जाता है ओर परमभाव को खोजने वाला आत्मा अविवेक में निमग्न नही बनता।

If one does not desire the ultimate purity he falls down from the heights of conscientiousness. And he who craves for the ultimate is not engulfed by unconscientiousness.

आत्मन्येवात्मनः कुर्यात्, यः षट्कारकसङ्गतिम्।
क्वाविवेकज्वरस्यास्य, वैषम्यं जडमञ्जनात्॥ 7 ॥

जो आत्म में ही आत्म के कारक छ को संबंधता।
उस आतमा की पुद्गलों में हो कभी ना मग्नता॥
अविवेक रूपी ज्वर उसे फिर क्यों चढ़ेगी विषमता।
ना ना कदापि ना चढ़े धनधन्य उसकी वीरता॥ 7 ॥

जो आत्मा मे ही आत्मा के छ कारको का संबंध करता है उसे पुद्गलों में मग्न होने से होने वाला अविवेक रूप ज्वर का वैषम्य कहाँ से होगा?

One who associate the six causative indicators of the soul with soul only and nothing outside, can never be infected with the fever of inconscientiousness caused by the involvement with matter.

संयमास्त्रं विवेकेन, शाणेनोत्तेजितं मुनेः।
धृतिधारोल्वणं कर्म-शत्रुच्छेदक्षमं भवेत्॥ 8 ॥

संतोष रूपी धार से सुविवेक रूपी शाण से।
मुनि ने किया है तेज अपना शस्त्र संयम भान से॥
वह शस्त्र संयम कर्म रूपी शुत्रु छेद समर्थ है।
जो छेदता वह धन्य बाकी सर्व जीवन व्यर्थ है॥ 8 ॥

विवेक रूप शाण द्वारा अत्यन्त तीक्ष्ण किया हुआ तथा धैर्य रूप धार से उग्र किया हुआ मुनि का संयम रूप शस्त्र कर्म रूप शत्रु का नाश करने में समर्थ होता हैं।

The sword of discipline of a sage, that has been sharpened on the grinding wheel of conscientiousness and honed with the stone of patience is capable of slaying the enemy in the form of karma.

माध्यस्थ-16

स्थीयतामनुपालम्भं, मध्यस्थेनान्तरात्मना।
कुतर्ककर्करक्षेपैस्त्यज्यतां बालचापलम्॥ 1 ॥

माध्यस्थ वृत्ति हो हृदय में द्वेष हो ना राग हो।
उपालंभ ना कोई दे सके जीवन महकता बाग हो।
कुतर्क कंकर डालना बालक चपलता छोड़ दो।
अपने विचारों को परम मध्यस्थ मन से जोड़ दो॥ 1 ॥

शुद्ध अन्तरंग परिणाम से मध्यस्थ होकर, उपालंभ न मिले इस प्रकार रहो। कुयुक्ति रूप कंकर डालने रूप बाल्यावस्था की चपलता का त्याग करो।

EQUANIMTY

Abandon the childlike, trivolous umbrage throwing off baseless arguments. With inner purity lead an eqnanimous life, so that no one complains

मनोवत्सो युक्तिगवीं, मध्यस्थस्याऽनुधावति।
तामाकर्षति पुच्छेन, तुच्छाऽऽग्रहमनः कपिः ॥ 2 ॥

मध्यस्थ नर का चित्त बछड़ा गाय युक्ति पकड़ता।
पर तुच्छ आग्रही चित्त बन्दर युक्ति गो पुंछ खींचता।
अंतर यही दोनों पुरुष में जो हृदय मध्यस्थ हो।
उस साधु नर के रागद्वेष सकल महल झट ध्वस्त हो ॥ 2 ॥

मध्यस्थ पुरुष का मन रूप बछड़ा युक्ति रूप गाय के पीछे दौड़ता है, जबकि तुच्छ आग्रही पुरुष का मन रूप बंदर युक्ति रूप गाय को पूंछ से खींचता है।

The difference between an equanimous and a prejudiced attitude is akin to the behaviour of a calf and of a monkey respectively. The former follows the cow of reason always, whereas the latter only pulls the tail and irks the cow of reason.

नयेपु • स्वार्थसत्येषु, मोघेषु परचालने।
समशीलं मनो यस्य, स मध्यस्थो महामुनिः ॥ 3 ॥

नय सत्य ये नय झूठ ये हैं यों विभाग करे नहीं।
अभिप्राय अपने से जो सच्चे अन्य झूठे भी कहीं।
दोनों नयों में चित्त की समभावना बढ़ती रहे।
मध्यस्थ ऐसे वे महा मुनिराज आतम धन लहे ॥ 3 ॥

अपने-अपने अर्थ में सत्य और दूसरों को मिथ्या बतानेमे निष्फल ऐसे सर्व नयों मे जिसका मन सम स्वभाव वाला है वह महामुनि मध्यस्थ है।

One who realizes that there are no absolutes in right and wrong and one who realizes that what is wrong in one context could be right in another, such an enlightened soul knows that the consceince grows and matures in both the circumstances Such a person alone is called *equanimous.*

स्वस्वकर्मकृतावेशाः, स्वस्वकर्मभुजो नराः।
न रागं नापि च द्वेषं, मध्यस्थस्तेषु गच्छति॥ 4॥

नर सकल अपने कर्मवश हैं कर्म फल ही भोगते।
उन मानवों पर राग क्या क्या द्वेष करना सोचते॥
मध्यस्थ तो उन पर करें ना राग भी ना द्वेष भी।
मन को विमल मध्यस्थ वृत्ति में रखे साधु सभी॥ 4॥

अपने-अपने कर्म में मनुष्य परवश बना हुआ है और अपने-अपने कर्म के फल को भोगने वाला है, ऐसा जानकर मध्यस्थ पुरुष राग और द्वेष को प्राप्त नही करता।

A Sadhu keeps his heart clear and equanimous, realizing that there is no point in liking or disliking people, for all actions and the resulting sufferrings are caused by ones own karma.

मनः स्याद् व्यापृतं यावत्, परदोषगुणग्रहे।
कार्यं व्यग्रं वरं तावन्मध्यस्थेनात्मभावने ॥ 5 ॥

पर दोष या गुण देखने में जब तलक मन रत रहे।
उतना समय भी साधु जन तो आत्म चिंतनरत रहे॥
पर चिंतना से क्या मिले मध्यस्थ नर यह सोचता।
निज ध्यान से निज चेतना से मोक्ष का मिलता पता ॥ 5 ॥

जब तक मन दूसरों के दोष और गुण को ग्रहण करने मे प्रवर्तमान हो तब तक मध्यस्थ पुरुष के लिये अपने मन को आत्म चिन्तन मे जोड़ना श्रेष्ठ है।

A sadhu with an equanimous heart does not waste time observing the vices and virtues of others, for according to such a man it is better to utilize that time in meditating on the 'Self' in order to attain 'Moksha'

विभिन्ना अपि पन्थानः, समुद्रं सरितामिव।
मध्यस्थानां परं ब्रह्म, प्राप्नुवन्त्येकमक्षयम् ॥ 6 ॥

ज्यों सकल सरिताओं की धारा एक सागर से मिले।
मध्यस्थ नर के पथ सभी परमात्म पद वर में मिले ॥
जो ब्रह्म है अक्षय सदा वह एक है मंसार में।
मध्यस्थ सब मिल लूंटते आनंद मोक्षागार में ॥ 6 ॥

मध्यस्थ पुरुषों के अलग-अलग मार्ग एक अक्षय उत्कृष्ट परमात्म स्वरूप को उसी प्रकार प्राप्त करते हैं जिस प्रकार नदियों के अलग-अलग प्रवाह समुद्र में मिल जाते हैं।

As all rivers flow into the same occan, so all paths traversed by a person with equanimity lead to the omniscent. There is only one all-encompassing pure state of soul and an equanimous soul regales in such an ocean of 'Moksha'.

स्वाऽऽगमं रागमात्रेण, द्वेषमात्रात्परागमम्।
न श्रयामस्त्यजामो वा, किन्तु मध्यस्थया दृशा ॥ 7 ॥

नहीं राग भावों से स्वीकारे शास्त्र अपने मानकर।
नहीं छोड़ते हैं द्वेष भावों से पराये जानकर॥
लेकिन हृदय में चिंतनाकर मध्यवृत्ति धारकर।
तजते असत् हम शास्त्र सत् स्वीकारते भवपारकर ॥ 7 ॥

स्व आगम का स्वीकार राग के कारण नही करते और नही द्वेष के कारण पर शास्त्र का त्याग करते हैं, बल्कि मध्यस्थ दृष्टि से ही स्वीकार अथवा त्याग किया जाता है।

Those who are equanimous accept or reject scriptures exclusively on merit irrespective of the source being their own sect or some other

मध्यस्थया दृशा सर्वेष्वपुनर्बन्धकादिषु।
चारिसंजीविनी-चारन्यायादाशास्महे हितम्॥ 8 ॥

चारिसंजीवनी चार न्याये अपुनर्बंधकादि सभी।
सब जीव का कल्याण हम चाहें वरे शिवपद सभी।
मध्यस्थ दृष्टि जो सहे वो पार भवसागर करे।
निज गुण प्रकट कर चित्त में मध्यस्थ भावों को भरे॥ 8 ॥

हम अपुनर्बधकादि मे मध्यस्थ दृष्टि द्वारा संजीवनी का चारा चराने के दृष्टान्त से सभी के कल्याण की आशा करते है।

-

The panacea provided by the four conceptual aspects of Ahimsa are conducive to the sense of equanimity and results in desiring the welfare of all

निर्भय–17

यस्य नास्ति पराऽपेक्षा, स्वभावाद्वैतगामिनः।
तस्य किं न भयभ्रान्तिक्लान्तिसन्तानतानवम्॥ 1॥

नहीं है अपेक्षा अन्य की निज भाव मस्ती में भरा।
इक में ही निज की पूर्णता जो माने वो साधु खरा॥
फिर हो कहाँ से क्लेश मन उसके न मन भय भ्रान्ति हो।
चित में बसे गुण अभय आत्मानंद सागर शान्ति हो॥ 1॥

जिसे 'पर' की कोई अपेक्षा नही है और जो स्वभाव की एकता में अर्थात् निज भावों में रमण करने वाला है उसे भय की भ्रांति द्वारा प्राप्त खिन्नता की परम्परा का अल्पत्व क्यों नही होगा ? अर्थात् उसे खिन्न होना ही नही पड़ेगा, क्योकि उसे कोई भय न होगा, कोई भ्रान्ति नहीं होगी।

Fearless

He who has no expectations from anyone except himself and is devoid of ambiguities, and one who has directed all his thoughts and actions towards the self, is free of all fears and illusions and the resultant sorrow.

भवसौख्येन किं भूरिभयज्वलनभस्मना।
सदा भयोज्झितं ज्ञानं, सुखमेव विशिष्यते ॥ 2 ॥

संसार के सुख सकल हैं भय रूप अग्नि से घिरे।
क्यों राचता है तेरा मन चेतन ! सदा भव भव फिरे ॥
जिसमें तनिक भी भय नहीं सर्वोच्च वह सुख ज्ञान है।
हो ध्यान से तो प्राप्त चेतन को खरा निजभान है ॥ 2 ॥

ऐसे संसार के सुख से क्या लाभ ? जो अति भय रूप अग्नि से भस्म हो गया हो ! वास्तव में भय रहित ज्ञान सुख ही सच्चा सुख है।

Every attraction of this world is surrounded by the fire of fear, yet the conciousness spins these webs of desire around it and falls in the trap of rebirth and reincarnation. True happiness flows out of the knowledge that is free of any fear of ambiguity.

न गोप्यं क्वापि नाऽऽरोप्यं, हेयं देयं न च क्वचित्।
क्व भयेन मुनेः स्थेयं, ज्ञेयं ज्ञानेन पश्यतः॥ 3॥

नहिं चोर भी ले जा सके ना लूंट डाकू कर सके।
नहीं गोपनीय न साधु उसको और कहिं पर रख सके॥
ऐसा है तत्त्व विज्ञान जो रहता हृदय में सर्वदा।
ना भय उसे होता अभय है पास जिसके श्रुत सदा॥ 3॥

जिसने ज्ञेय तत्त्व को अपने ज्ञान से देख लिया है, ऐसे मुनि को कहीं पर भी कोई भय नही है क्योकि उसकी सम्पदा न गोपनीय है, न कही आरोपित करने योग्य है, न छोड़ने योग्य है, न देने योग्य है।

Fear can never touch one who gains knowledge of the 'shrutas' for no one can steal the knowledge. It is nothing clandestine and it cannot be misplaced In fact it remains with him forever.

एकं ब्रह्मास्त्रमादाय, निघ्नन् मोहचमूं मुनिः।
बिभेति नैव सङ्ग्रामशीर्षस्थ इव नागराट्॥ 4॥

मुनि ब्रह्म ज्ञान सुशस्त्र से रिपु मोह पर विजयी बने।
ज्यों युद्ध करता श्रेष्ठ हाथी अभय होता है रणे॥
नहिं चित्त में भय तनिक संयम भाव मन में है भरा।
यों अभय रहते जगत से मुनिवर्ग से धन धन धरा॥ 4॥

एक ब्रह्म ज्ञान रूप शस्त्र से सुसज्ज होकर मोह रूप शत्रु सेना का संहार करता हुआ संग्राम के शीर्ष (सबसे आगे) पर रहते उत्तम हाथी के समान मुनि कभी भय को प्राप्त नही करता।

A Muni armed with cosmic knowledge is like a powerful elephant in the battlefield who triumphs over the enemy, attachment. There is no place for fear in his heart and the world is grateful for the presence of such a class of people.

मयूरी ज्ञानदृष्टिश्चेत्, प्रसर्पति मनोवने।
वेष्टनं भयसर्पाणाँ, न तदानन्दचन्दने ॥ 5 ॥

मन रूप वन में ज्ञान दृष्टि मोर नृत्य करे सही।
आनंद चंदन वृक्ष पर भय सर्प आ सकता नहीं ॥
खुल गई मनुज की आत्म दृष्टि चित्त निर्भय हो गया।
संसार रूपी भय हृदय से बस उसी क्षण खो गया ॥ 5 ॥

ज्ञान दृष्टि रूपी मयूरी (मोर) जब मन रूप वन मे मग्नपूर्वक विचरण करती है तब आनंद रूप चंदन वृक्ष को भय रूप सर्व वेष्टित नही कर सकते।

When the peacock of knowledge dances in the jungle of the mind, then the snake of fear cannot approach the sandalwood tree of pure Bliss for then the heart is rendered fearless as the mind's vision expands.

कृतमोहास्त्रवैफल्यं, ज्ञानवर्म बिभर्ति यः।
क्व भीस्तस्य क्व वा भङ्गः, कर्मसङ्गरकेलिषु ॥ 6 ॥

धर ज्ञान बख्तर के हराया मोह रिपु दल को यदा।
उसको न भय है कर्म से संग्राम करते हैं तदा॥
नहिं युद्ध क्रीड़ा में पराभव की रहे संभावना।
संयम अभय मन को करे ज्यों करे चंदन बावना ॥ 6 ॥

जिसमें मोह रूप अस्त्र को विफल किया है, ऐसा ज्ञान रूप बख्तर धारण करने वाले मुनि को कर्मरूप शत्रु के साथ संग्राम क्रीडा खेलते हुए न तो भय ही लगता है, और न ही वह पराजित होता है।

A Muni who possesses the armour of knowledge and is capable of diffusing the weapon of attachment, is fearless in a battle with the enemy, karma, and even triumphs over it.

तूलवल्लघवो मूढा, भ्रमन्त्यभ्रे भयाऽनिलैः ।
नैकं रोमाऽपि तैर्ज्ञानगरिष्ठानां तु कम्पते ।। 7 ।।

जो मूढ़ है वे आक रूई सम भये नभ में सदा।
भय रूप वायु कंप से अस्थिर बने वे सर्वदा ।।
लेकिन जिन्होंने ज्ञान का आलोक मन में भर लिया।
उनका न इक भी रोम कंपे अभय में रमता जिया ।। 7 ।।

आक की रूई के समान जो हल्के है ऐसे मूढ़ पुरुष भय रूप वायु से आकाश में घूमते हैं, परन्तु जो ज्ञान से गरिष्ठ अर्थात् भारी हैं उन महापुरुषो का एक रोम भी कंपित नही होता।

Foolish people lacking in gravity are like the lightest kind of cotton wool from the "aak" tree. Such foolhardy people are easily scattered about the sky by the winds of Fear. But such winds can not stir even a hair from the bodies of those who are firm and possess the gravity of knowledge.

चित्ते परिणतं तस्य, चात्रिमकुतो भयम्।
अखण्डज्ञानराज्यस्य, तस्य साधोः कुतो भयम्॥ 8॥

सम्यक् चरण को भय नहीं होता किसी से सर्वदा।
चारित्र ऐसा मन रमे उनका हृदय होता मुदा॥
मन मानसे हो ज्ञान अक्षत फिर कहाँ से भय जगे।
सद् ज्ञान गंगा में नहाते सकल भव भय भ्रम भगे॥ 8॥

जिसे किसी से भी भय नही, ऐसा चारित्र जिसके हृदय में है, ऐसे अखंड ज्ञान रूप राज्य वाले साधु को भय कहाँ से होगा ?

The one who has attained equaminity, the strength of character and bathes in the Ganges of Right knowledge, such a person is rendered totally fearless.

अनात्म-प्रशंसा-18

गुणैर्यदि न पूर्णोऽसि, कृतमात्मप्रशंसया।
गुणैरेवाऽसि पूर्णश्चेत्, कृतमात्मप्रशंसया॥ 1 ॥

यदि तूं गुणों से हीन है तो निज प्रशंसा क्यों करे ?
यदि तूं गुणों से पूर्ण है तो निज प्रशंसा क्यों करे ?
निज गुण प्रशंसा योग्य ना इक आत्म साधक के लिये।
करता नहीं गुणगान अपना आत्म अमृत रस पिये॥ 1 ॥

यदि तूं गुणों से पूर्ण नही है तो फिर क्यो अपनी प्रशंसा करता है ? यदि तूं गुणों से पूर्ण है तो अपनी प्रशंसा से क्या लाभ ?

Humility

If you do not possess any good qualities why should you praise yourself ? If you do possess good qualities you do not need to be conceited. Self-praise is detrimental to the growth of a true Sadhu.

श्रेयोद्रुमस्य मूलानि, स्वोत्कर्षाम्भःप्रवाहतः।
पुण्यानि प्रकटीकुर्वन्, फलं किं समवाप्स्यसि॥ 2 ॥

कल्याण रूपी वृक्ष की वर पुण्य रूपी जड़ कही।
स्वोत्कर्ष रूपी जल बहा क्यों जड़ प्रकट करता सही॥
जिस वृक्ष की जड़ प्रकट हो जाती न फल उसमें लगे।
जड़ पुण्य रूपी प्रकट हो तो कैसे निज आतम जगे॥ 2 ॥

कल्याण रूप वृक्ष की पुण्य रूप जड़ को तूं आत्म प्रशंसा रूप पानी के प्रवाह से उघाड़ रहा है, फल (ऐसा करने से) तुझे क्या लाभ होगा ?

The tree of well being has roots of virtues. By watering it with the water of self-praise do not expose the roots (virtues) to the general view. For a tree whose roots are exposed can not bear the fruits of knowledge of the Self.

आलम्बिता हिताय स्युः, परैः स्वगुणरश्मयः।
अहो स्वयं गृहीतास्तु, पातयन्ति भवोदधौ॥ 3 ॥

निज गुण ग्रहण जो अन्य नर करता भवोदधि को तिरे।
लेकिन मनुज निज गुण ग्रहे तो चक्र भव में ही फिरे।
गुण रश्मियाँ नर पकड़ कर भव कूप से जावे निकल।
पर-रश्मियाँ जो स्वयं पकड़े डूबता भव कूप मल॥ 3 ॥

दूसरे लोग जब तुम्हारी गुण रूप रश्मियाँ प्राप्त करते हैं, तो इसमें उनका हित होता है, पर आश्चर्य तो यह है कि यदि उन्ही अपने गुणों की रश्मियों को तुम स्वयं पकड़ते हो तो भवसागर में डूबो देती हैं वे रश्मियॉ।

When one's virtues reach out to touch other they are benefitted. But paradoxically when one's virtues touch or affect one's ownself they drown us in conceit thereby rendering it impossible to extricate oneself from the vicious cycle of birth and rebirth.

उच्चत्वदृष्टिदोषोत्थस्वोत्कर्षज्वरशान्तिकम्।
पूर्वपुरुषसिंहेभ्यो, भृशं नीचत्वभावनम्॥ 4॥

जो हो गये हैं पूर्व में वर सिंह सम आचार्य वर।
तुलना करूँ क्या तुच्छ मैं लघु दीप वे रवि द्योत कर॥
उच्चत्व दृष्टि से जगे अभिमान रूपी ज्वर यदा।
मैं निम्न हूँ यह ज्वर विनाशक भावना भाओ सदा॥ 4॥

उचत्व-दृष्टि के दोष से मन में जो अभिमान रूप ज्वर पैदा हुआ है, उसकी शान्ति के लिये ऐसी भावना भानी चाहिये कि पूर्व में अनेक महापुरुष सिंह रूप हुए हैं, मैं उन सबसे न्यून अर्थात् छोटा हूँ।

Those who are over ambitious are gripped by the fever of conceit. In order to decrease or get rid of the fever it is advisable that they remind themselves that they are like a tiny lamp in comparison to the sun like, lionhearted stalwarts that have dotted history. This reminder will help them overcome the fever of conceit

शरीररूपलावण्यग्रामाऽऽरामधनादिभिः ।
उत्कर्षः परपर्यायै-श्चिदानन्दघनस्य कः ॥ 5 ॥

तूं ज्ञान से परिपूर्ण है आनंदघन भरपूर है।
निज चेतना में भान का प्रमुदित प्रकाशित नूर है॥
फिर रूप का लावण्य का धन गाम बाग पर्याय का।
आनंदघन तूं क्यों करे अभिमान अस्थिर आय का ॥ 5 ॥

जो ज्ञानानंद से भरपूर है वह शरीर के रूप लावण्य, गॉव, बगीचा, धन आदि पर-पर्यायों का अभिमान क्या करेगा ?

Ye, who is seeped in knowledge and is bliss incarnate. Ye, whose conciousness reflects the love-light of the superconsceince. Why should ye be conceited even if ye possess beauty, charm, wealth lands and gardens galore ? Ye blissful one, why should ye be proud of these transitory things like your earnings.

शुद्धाः प्रत्यात्मसाम्येन, पर्यायाः परिभाविताः।
अशुद्धश्चाऽपकृष्टत्वान्-नोत्कर्षाय महामुनेः ॥ 6 ॥

हर आत्म में नय दृष्टि से पर्याय शुद्ध समान है।
होते हैं तुच्छ विभाव युत पर्याय ऐसा ज्ञान है॥
ऐसा परम शुभ ज्ञान जिन मुनिराज को होता यदा।
पर्याय पर अभिमान उनको नहीं होता है कदा॥ 6 ॥

शुद्ध नय की दृष्टि से हर आत्मा के शुद्ध पर्याय एक समान हैं। और, अशुद्ध विभाव पर्याय निकृष्ट अर्थात् तुच्छ होने से उनके कारण 'महामुनि' अभिमान नही करते।

Every soul is pure and equal from the view point of the ultimate. From the transitory angle vice and virtues are but reflections of alternative states. The sages who acquire this knowledge are never proud of the transitory.

क्षोभं गच्छन् समुद्रोऽपि, स्वोत्कर्षपवनेरितः।
गुणौघान् बुद्बुदीकृत्य, विनाशयसि किं मुधा॥ 7॥

उत्कर्ष रूपी पवन प्रेरित क्षोभ सागर भी लहे।
लहरादि से निज शक्ति क्षमता का विनाश सदा सहे॥
त्यों आत्म गुण गण क्यों विनाशे हे मनुज ! अभिमान कर।
स्वोत्कर्ष महिमा योग्य ना तूं सोच चेतन चेतकर॥ 7॥

मर्यादा युक्त होने पर भी कभी-कभी पवन के कारण समुद्र मे भी ज्वार भाटे आते हैं। उसी प्रकार तूं अपने आत्म गुणों का व्यर्थ मे विनाश क्यो करता है।

The tiny waves on the surface of the sea often become influenced by high winds causing tidal waves in the otherwise fathomless and still sea Likewise, the dormant baser instinets,- in an otherwise elevated and tranquil soul, are aroused by the winds of self-praise to cause a similar havoc. So be cautious and ponder.

निरपेक्षानवच्छिन्नानन्तचिन्मात्रमूर्तयः।
योगिनो गलितोत्कर्षाऽपकर्षाऽनल्पकल्पनाः ॥ 8 ॥

उत्कर्ष की अपकर्ष की अति कल्पना से हीन है।
उन योगियों के चित्त में चिद्मात्र बजती बीन है॥
निरपेक्ष अइवच्छिन्न" है व अनन्त ऐसा ज्ञान है।
वे योगिराज बने तदा चिन्मात्रमूर्ति समान है॥ 8 ॥

जिनका स्वरूप निरपेक्ष से युक्त अर्थात् अपेक्षा रहित ज्ञानमय है और उत्कर्ष तथा अपकर्ष की कल्पनाएँ जिनकी गल गई है अर्थात् समाप्त हो गई हैं, योगी ऐसे होते हैं।

People who are endowed withèquanimtıtyand dwell in pure absolute knowledge remaining unaffected by the ups and downs of life, are true yogis.

तत्त्वदृष्टि-१९

रूपे रूपवती दृष्टिर्दृष्ट्वा रूपं विमुह्यति।
मज्जत्यात्मनि नीरूपे, तत्त्वदृष्टिस्त्वरूपिणी॥ 1 ॥

भरि रूप दृष्टि रूप देखी रूप में आसक्त हो।
पौद्गलिक दृष्टि है जिन्हों की रूप में अनुरक्त हो।
है तत्त्व दृष्टि रूप विरहित वे अरूपी आत्म में।
बनते सदा रहते सदा सम्पूर्ण मग्न निजात्म में॥ 1 ॥

रूपवती दृष्टि रूप को देखकर रूप मे मोहित होती है जबकि रूप रहित तत्त्व दृष्टि तो रूप रहित आत्मा में मग्न होती है।

Spiritual Insight

The physical eye is infatuated at the sight of physical beauty, whereas, the formless spiritual vision or insight dwells in and focuses on the formless soul.

भ्रमवाटी बहिर्दृष्टिर्भ्रमच्छाया तदीक्षणम्।
अभ्रान्तस्तत्त्वदृष्टिस्तु, नास्त्यां शेते सुखाशया॥ 2 ॥

भ्रम वाटिका है बाह्य दृष्टि प्रकाश छाया मात्र है।
जो भ्रान्ति में उलझे सदा वह मुक्ति का नहीं पात्र है॥
वह तत्त्व दृष्टि आतमा भ्रम छांव में सोता नहीं।
सुख मानता ना भ्रान्ति में वह आत्म सुख पाता सही॥ 2 ॥

बाह्य दृष्टि तो भ्रम की वाटिका है। बाह्य दृष्टि का प्रकाश भ्रान्ति की छाया है। परन्तु, भ्रान्ति रहित तत्त्व दृष्टि वाला साधक भ्रम की छाया में सुख की इच्छा से कभी शयन नही करता।

The external sight is a garden of delusions The glow of the outward eye is an illusion. But a true sadhak (Spiritual practitioner) with spiritual insight and devoid of delusions never sleeps under the shade of delusions with a hope of achieving happiness.

ग्रामाऽऽरामादि मोहाय, यद्दृष्टं बाह्यया दृष्टा।
तत्त्वदृष्ट्या तदेवान्तर्नीतं वैराग्यसम्पदे ॥ 3 ॥

नर बाह्य दृष्टि के लिये उद्यान ग्रामादिक बने।
कर देख उनको मोह के मन उमडते बादल घने ॥
पर तत्त्व दृष्टि सुज्ञ तो वैराग्य पाता देखकर।
अपनी बदल दो दृष्टि तो पाओ हे चेतन शिव नगर ॥ 3 ॥

बाह्य दृष्टि से देखे जाने वाले ग्राम-बगीचे आदि मोह में निमित्त बनते हैं। जबकि तत्त्व दृष्टि से देखने पर वे ही (ग्राम-बगीचे आदि) आत्मा मे वैराग्य सम्पदा का आधार बन जाते हैं।

The gardens and towns seen through the external eyes become the cause of attachment and lust. Whereas those very sights through spiritual insight become the basis of total detachment from the material world.

बाह्यदृष्टेः सुधासारघटिता भाति सुन्दरी।
तत्त्वदृष्टेस्तु सा साक्षाद्विण्मूत्रपिठरोदरी ॥ 4 ॥

सुन्दर सलोनी रूपस्वामिनि सुन्दरी को देखकर।
अमृत समान लगे उसे जो बाह्य दृष्टि होत नर ॥
पर तत्त्व दृष्टि साधुनर को लगे वो ही सुन्दरी।
विष्ठा प्रपूरित मूत्र पूरित चर्म घट पिठरोदरी ॥ 4 ॥

बाह्य दृष्टि से देखने पर 'स्त्री' अमृत धार से युक्त सौन्दर्यवती दिखाई देती है। जबकि तत्त्व दृष्टि वाले को वही स्त्री प्रत्यक्ष विष्ठा और मूत्र के घर के समान उदर वाली लगती है।

When percieved through external eyes a woman appears to be as beautiful as a trickle of heavenly nectar. But when observed by one with spiritual insight a woman's body appears to be nothing more than a bloated belly full of metabolic waste products.

लावण्यलहरीपुण्यं, वपुः पश्यति बाह्यदृक्।
तत्त्वदृष्टिः श्वकाकानां, भक्ष्यं कृमिकुलाकुलम्॥ 5॥

सौन्दर्य की सुन्दर तरंगों से बना ये सुघड़ तन।
आसक्त नर जो बाह्य दृष्टि सोचता रहता है मन॥
लेकिन सदा नर तत्त्व दृष्टि चिंतना करता है मन।
कुत्ते तथा कौओं के भक्ष्य योग्य यह तन कीट घन॥ 20॥

'बाह्य दृष्टि' सौन्दर्य के तरंगों से पवित्र शरीर देखता है, जबकि तत्त्व-दृष्टि कौओ तथा कुत्तों के खाने योग्य कृमि-समूह से भरा हुआ देखता है।

The external eyes percieve the physical body as an embodiment of pure beauty. Wheres, the same body is percieved by those with spiritual insight as worm-infected and fit for being consumed by dogs and crows.

गजाश्वैर्भूपभवनं, विस्मयाय बहिर्दृशः।
तत्राऽश्वेभवनात्कोऽपि, भेदस्तत्त्वदृशस्तु न॥ 6 ॥

गज अश्व युत नृप महल को कर देख विस्मत जो बने।
नर बाह्य दृष्टि वह कहावे देह रत वह हर क्षणे॥
नृप महल वन में भेद कुल भी तत्त्व दृष्टि ना करे।
सब बाह्य पुद्गल परिणति क्या महल क्या वन मन फिरे॥ 6 ॥

बाह्य दृष्टि गज अश्व सहित राजमहल को देखकर (मुग्ध होकर) विस्मय प्राप्त करता है, जबकि तत्त्वदृष्टि को तो राजमहल में या हाथी अश्व संयुत वंन में कोई अन्तर नही दिखाई देता।

The external eyes are wonder struck at the sight of palace with elephants and horses in abundance. But one with spiritnal insight percieves such a palace as a veritable jungle full of wild animals.

भस्मना केशलोचेन, वपुर्धृतमलेन वा।
महान्तं बाह्यदृग् वेत्ति, चित्साम्राज्येन तत्त्ववित्।।7॥

जो बाह्य दृष्टि चित्त है वह साधु उनको मानता।
रक्षा लगावे केश लोचे देह मैला राखता।
बाह्य क्रियाओं से ही साधु रूप में पहिचानता।
पर तत्त्व-दृष्टि ज्ञान प्रभुता से महात्मा जानता॥7॥

बाह्य दृष्टि व्यक्ति उसे महात्मा समझता है जो भस्म लगाता है, केश-लुंचन करता है और शरीर पर मैल धारण करता है। जबकि 'तत्त्वदृष्टि व्यक्ति' महात्मा की पहिचान ज्ञान की प्रभुता से करता है।

People who see only with the external eyes are prone to think that those who apply ash to their bodies, pluck their heads bald and allow dust and dirt to accumalate on their bodies are truly emancipated souls. But those with true spiritual insight recognize only those with the gravity of knowledge in them as truly elevated souls.

न विकाराय विश्वस्योपकारायैव निर्मिताः ।
स्फुरत्कारुण्यपीयूषवृष्टयस्तत्त्वदृष्टयः ।। 8 ।।

करुणा प्रपूरित दृष्टि अमृत वृष्टि जो करते सदा।
ज्ञानी परम शुभ तत्त्व दृष्टि जन्म लेते सर्वदा।
उपकार हेतु जन्मते, न विकार हेतु जन्मते।
जग सकल का उपकार हो, चिंतन यही मन धारते ।। 8 ।।

अत्यन्त स्फुरित करुणा रूप अमृत वर्षा करने वाले तत्त्व दृष्टि महापुरुषों का जन्म विकार हेतु नही अपितु विश्व पर उपकार के लिये होता है।

Those who possess spiritual insight live for the benefit of others and never cause any harm to anyone. They are the spiritually awake people who possess empathy for others.

सर्व-समृद्धि-२०

बाह्यदृष्टिप्रचारेषु,   मुद्रितेषु   महात्मनः ।
अन्तरेवावभासन्ते, स्फुटाःसर्वाःसमृद्धयः ॥ 1 ॥

जब विषय सेवन आदि बाह्य स्वरूप से मन हीन हो।
तब चेतना में आत्म की बज जाती सुन्दर बीन हो।
ज्ञानी महात्मा आत्म में ऋद्धि समृद्धि देखते।
मन बाह्य से अन्तर तरफ मोड़े अनुभव देखते ॥ 1 ॥

बाह्य दृष्टि की प्रवृत्ति बंद होने पर महापुरुष अपने अन्तर मे ही रम रही सर्व समृद्धियो का आभास अर्थात् बोध करते हैं।

The Gandem

In emancipated souls, when the interest in the outside world dwindles then spiritual awakening begins resulting in the discovery of a whole new world full of wealth and happiness within

समाधिर्नन्दनं धैर्यं, दम्भोलिः समता शची।
ज्ञानं महाविमानं च, वासवश्रीरियं मुनेः ॥ 2 ॥

जो इन्द्र पार्श्वे वज्र नंदन-वन विमान तथा शची।
मुनिराज के भी पास में ये लक्ष्मियाँ खुद ने रची॥
आत्म समाधि-रूप नन्दन ज्ञान-रूप विमान है।
इन्द्राणी है समभाव रूपी धैर्य वज्र समान है॥ 2 ॥

'मुनि' इन्द्र के समान समृद्धि वाले हैं। समाधि रूप नन्दन वन, धैर्य रूप वज्र, समता रूप इन्द्राणी और ज्ञान रूप महाविमान मुनि के पास है।

A 'Muni' is always as rich and as well endowed as Indra, the Lord of gods himself. For he psossess 'Samadhi' (transcendental Sleep) which is like Nandanwan (a beautiful garden of the gods),, Patience like vajra (thunderbolt), equanimity like Indrani (Indra's consort) and knowledge like vimana (Space vehicle of indra).

विस्तारितक्रियाज्ञानचर्मच्छत्रो निवारयन्।
मोहम्लेच्छमहावृष्टिं चक्रवर्ती न किं मुनिः ॥ 3 ॥

वे मोहरूपी म्लेच्छ से जो दिनरात ही वृष्टि करे।
निज ज्ञान रूपी छत्र रत्न अपूर्व से उसको हरे॥
चारित्र रूपी चर्म रत्न से वृष्टि को वे रोकते।
ऐसे मुनि चक्री नहीं क्या भान निज विस्तारते॥ 3 ॥

क्रिया और ज्ञान रूप चर्म रत्न और छत्र रत्न के विस्तार से मोहरूप म्लेच्छो द्वारा की गई महावृष्टि को रोकने वाले ये मुनि क्या चक्रवर्ती नही ?

The torrential rains of filthy attachment are warded off by their bejewelled umbrellas of knowledge The onslaught of those heavy rains is diverted by their bejewelled armour of good conduct Then, are not such munis true 'Chakravartis' (Great conquerers of the world).

नवब्रह्मसुधाकुण्डनिष्ठाऽधिष्ठायको मुनिः ।
नागलोकेशवद् भाति, क्षमां रक्षन् प्रयत्नतः ।। 4 ।।

ब्रह्मचर्य के नवकुंड का जो ध्यान से रक्षण करे।
सहिष्णु परम मुनि धैर्य उर में शेषनाग समा धरे।।
ऐसे मुनीश्वर ऋद्धिमान जगत शिरोमणि श्रेष्ठ है।
नृप इन्द्र से सुर चक्रवर्ती से भी सब में ज्येष्ठ है।। 4 ।।

नव प्रकार के ब्रह्मचर्य रूप अमृत कुंड की निष्ठा के सामर्थ्य से तथा प्रयत्नपूर्वक क्षमा की साधना करते ये महामुनि नागलोक के स्वामी की तरह सुशोभित होते हैं।

They carefully guard the nine tanks of celibacy. They are patience and tolerance personified. Such knowledgeable and talented munis are definitly greater than the greatest of gods and kings.

मुनिरध्यात्मकैलासे, विवेकवृषभस्थितः।
शोभते विरतिज्ञप्तिगंगागौरीयुतः शिवः ॥ 5 ॥

अध्यात्म रूपी शिखर है कैलाश वृषभ विवेक है।
चारित्र गंगा ज्ञान गौरी साधु शिवसम एक है॥
ऐसे मुनीश्वर ऋद्धिमान जगत शिरोमणि श्रेष्ठ है।
नृप इन्द्र से सुर चक्रवर्ती से भी सब में ज्येष्ठ है॥ 5 ॥

अध्यात्म रूप कैलाश पर्वत पर, विवेक रूप वृषभ पर विराजमान, चारित्र और ज्ञान रूप क्रमशः गंगा और पार्वती सहित महादेव की तरह 'मुनिराज' शोभा प्राप्त करते हैं।

The accomplished sage is like Lord Shiva. He dwells on the Kailash mountain of spiritualism and sits on the bull of discerning attitude along with Ganges of conduct and Parvati (his consort) of knowlege

ज्ञानदर्शनचन्द्रार्कनेत्रस्य नरकच्छिदः।
सुखसागरमग्नस्य, किं न्यूनं योगिनो हरेः ॥ 6 ॥

वर ज्ञान दर्शन सूर्य शशि सम नेत्र है जिनके परम।
कर नाश नारक का मगन सुख में विराजे विष्णु सम ॥
ऐसे मुनीश्वर ऋद्धिमान जगत शिरोमणि श्रेष्ठ है।
नृप इन्द्र से सुर चक्रवर्ती से भी सब में ज्येष्ठ है ॥ 6 ॥

ज्ञान और दर्शन रूप सूर्य तथा चन्द्र जिनके नेत्र है। नरक गति रूप नरकासुर का नाश करने वाले, सुख रूप समुद्र में मगन रहते 'मुनिराज' श्रीकृष्ण से क्या कम हैं ?

He possesses the eyes of sún of right knowledge and moon of right perception. He has destroyed the chance of passing into hell as Vishnu destroyed the demons He dwells in the ocean of bliss. He is no less than Vishnu.

या सृष्टिर्ब्रह्मणो बाह्या, बाह्यापेक्षावलम्बिनी।
मुनेः परानपेक्षाऽन्तर्गुणसृष्टिस्ततोऽधिका ॥ 7 ॥

ऐश्वर्यशाली ब्रह्म जी जब बाह्य जग रचना करे।
उसमें अपेक्षा बाह्य कारण की,, न बिन कुछ भी करे॥
निरपेक्ष होकर आत्म में गुण सृष्टि मंगल जो करे।
मुनिराज ब्रह्मा से भी ऊंचे आत्मश्रुत पदवी वरे॥ 7 ॥

ब्रह्मा की सृष्टि तो बाह्य जगत रूप है और बाह्य की अपेक्षा पर अवलम्बत है, जबकि मुनि की अन्तरंग गुण-सृष्टि तो अन्यों की अपेक्षा रहित है, अतः यह अधिक अर्थात् उत्कृष्ट है।

This world which is created by Brahma the Creator is an externalization and is dependent on external factors. But the internal world of a munis heart is definitely superior for it is independent of extraneous factors and is extramundane.

रत्नैस्त्रिभिः पवित्रा या, स्रोतोभिरिव जान्हवी।
सिद्धयोगस्य साऽप्यर्हत्पदवी न दवीयसी ॥ 8 ॥

त्रय रत्न से पावन सदा ज्यों स्रोत से स्रोतस्विनी।
ऐसी परम शुभ तीर्थपति पदवी समुज्ज्वल पावनी॥
मुनि सिद्ध योगी जो बने उनके लिये नहीं दूर है।
अतिशीघ्र वे पद प्राप्त करते सुख जहाँ-भरपूर है॥ 8 ॥

जिस प्रकार तीन प्रवाहों से पवित्र गंगा है, उसी प्रकार तीन रत्नों से युक्त (ज्ञान, दर्शन, चारित्र) तीर्थंकर पद भी परम निर्मल है। यह पद भी सिद्ध योगी मुनि के लिये दूर नही है।

Just like the holy Ganges river is a confluence of three rivers so the stature of the Tirthankars is obtained by the acquisition of the three jewels of Right knowledge, Right perception and Right conduct This exalted stature can be attained by a true Muni or Yogi as well.

कर्म-विपाक-चिंतन-21

दुःखं प्राप्य न दीनः स्यात्, सुखं प्राप्य च विस्मितः।
मुनिः कर्मविपाकस्य, जानन् परवशं जगत्॥1 1॥

जाने मुनीश्वर कर्मफल परवश जगत में है सदा।
यों जानकर मुनिराज सुख को प्राप्त कर नहीं हो मुदा॥
नहिं दीन बनते प्राप्त कर दुख दर्द पीड़ा जगत में।
मुनि कर्म फल चिंतन करे सुख आत्म चिंतन एक में॥ 1॥

कर्म विपाक वश पराधीन बने इस जगत को जानते हुए साधु दुःख पाने पर दीन नही बनते व सुख पाने पर विस्मित नही होते।

The fruition of karma

Kowing that this world is shackled by the karma generated effects, a Sadhu neither gets perturbed by sorrows nor does he get excited by pleasures

येषां भ्रूभङ्गमात्रेण, भज्यन्ते पर्वता अपि।
तैरहो कर्मवैषम्ये, भूपैर्भिक्षाऽपि नाऽऽप्यते ॥ 2 ॥

सोचो अहो क्या कर्म गति अति विषम है इसकी दशा।
रे जीव ! तुमको क्यों चढ़े फिर मान धन सत्ता नशा ॥
जिस भूप के भ्रू मात्र हिलने से गिरे पर्वत बढ़े।
वैषम्य हो जब कर्म का तब भीख मांगे वे खड़े ॥ 2 ॥

जिनकी भृकुटी चढ़ने मात्र से पर्वत भी टूट जाते है, ऐसे बलवान् राजा भी जब कर्म की विषमता होने पर भीख मांगने पर मजबूर हो जाते हैं—उन्हें भीख भी नही मिलती। ये कैसा आश्चर्य है ?

In this karma generated world no one is exempted from its effects. Even an emperor whose very raising of an eyebrow can cause mountains to crumble, could be reduced to begging for alms and still not get it, why then in the world does one allow wealth, power and recognition go to ones head ?

जातिचातुर्यहीनोऽपि, कर्मण्यभ्युदयावहे।
क्षणाद्रङ्कोऽपि राजा स्याच्छत्रच्छन्नदिगन्तरः ॥ 3 ॥

जब उदय कारक कर्म का होता उदय तब प्राप्त हो।
चतुराई से भी जाति से भी हीन बनता आप्त हो॥
क्षण में बने नृप रंक भी शुभ कर्म का जब उदय हो।
दिशि क्षेत्र ढंकता छत्र से जग सकल में जय विजय हो ॥ 3 ॥

अभ्युदय करने वाले कर्म का उदय होने पर जातिहीन, चातुर्य हीन और रंक होने पर भी क्षण भर मे समस्त दिशाओं को छत्र से अविच्छिन्न करने वाला राजा बन जाता है।

When karma generated effects so compel, even a lowly and dull tramp can, in a matter of moments, turn into an all powerful emperor whose umbrella like regime extends into each direction.

विषमा कर्मणः सृष्टिर्दृष्टा करभपृष्ठवत्।
जात्यादिभूतिवैषम्यात्, का रतिस्तत्र योगिनः ? ॥ 4 ॥

सृष्टि विषम है कर्म की रचना गति अति विषम है।
कई जाति से हैं हीन ऊंचे कर्म को ना शरम है॥
है कर्म की ये विषमता बस ऊंट पीठ समान है।
यों देख मुनि धारे न प्रीति नित रहे निजभान है॥ 4 ॥

कर्म की यह सृष्टि ऊंट की पीठ के समान के विषम है। (अर्थात् समानता का अभाव है) जाति आदि उत्पत्ति के वैषम्य से भरी इस सृष्टि मे योगी को क्या प्रीति हो सकती है ?

This world which is the resultant of the process of Karma is as enigmatic as the odd back of a camel. Therefore a Sadhu never gets attached to such a world where paradoxes like lofty deeds in a low caste coexist.

आरुढाः प्रशमश्रेणिं, श्रुतकेवलिनोऽपि च।
भ्राम्यन्तेऽनन्तसंसारमहो दुष्टेन कर्मणा॥ 5 ॥

श्रुत के बलीश्वर साधु जन जो श्रेणी उपशम पर चढे।
निज आत्म शुद्धि सीढ़ियों पर भाव धर आगे बढ़े॥
अति दुष्ट कर्म विपाक से वे भी जगत चक्कर फँसे।
हारे सभी जन कर्म आगे कर्म राजा तो हँसे॥ 5 ॥

उपशम श्रेणी चढ़ने वाले तथा श्रुतकेवली भी दुष्ट कर्म वश अनन्त संसार में भटक जाते हैं। इससे बड़ा आश्चर्य क्या ?

It is amazing how a shruta kewali (having knowledge of all scriptures) or Sadhu escalating on the passionless path of spiritualism is also bogged down and trapped into this cycle of birth and death only because of the fruition of some vile karma.

अर्वाक् सर्वापि सामग्री, श्रान्तेव परितिष्ठति।
विपाकः कर्मणः कार्यपर्यन्तमनुधावति॥ 6 ॥

साधन सभी हो पास में तो भी रहे सब श्रान्त सम।
हो कर्म कारण तो ही होता कार्य पूरा सफलतम॥
दौड़े सदा ही कर्म का परिणाम पीछे उम्र भर।
बिन कर्म के कुछ हो नहीं चाहे लगावे जोर नर॥ 6 ॥

पास पड़ी सारी अन्य सामग्री (कारण) थके हारे की तरह पड़ी रहती है जबकि कर्म का विपाक कार्य के अन्त तक पीछे दौड़ता रहता है।

Despite all the facilitating factors and all efforts success may still elude one till the moment of fruition of positive karma Thus karma pursues one all through the life.

असावचरमावर्ते, धर्मं हरति पश्यतः।
चरमावर्तिसाधोस्तु, छलमन्विष्य हृष्यति॥ 7॥

यह कर्म का फल पूर्व चरमावर्त से हरता धरम।
स्थिर चरम में भी देख मुनि के दोष होता हर्षतम॥
ऐसा परम बलवान होता कर्म का परिणाम है।
कर नाश घाती कर्म का पाओ परम शिवधाम है॥ 7॥

यह कर्म विपाक (अंतिम पुद्गल परावर्त को छोड़कर) अन्य पुद्गल परावर्त मे देखते-देखते धर्म को हर लेता है और चरम पुद्गल परावर्त में रमण करने वाले साधुजनों के भी छिद्र देखकर प्रसन्न होता है।

The fruition of karma wipes out the virtues within a moment in any transitional state of matter besides the last stage It even smiles at the faults of even the most accomplished sages who are on the verge of the final achievement.

साम्यं बिभर्ति यः कर्मविपाकं हृदि चिन्तयन्।
स एव स्याच्चिदानन्द-मकरन्दमधुव्रतः ॥ 8 ॥

शुभ अशुभ कर्म विपाक को जो देख मन समता धरे।
मुनिराज योगी वे सदा जो पान शम रस नित करे॥
वे ही मुनीश्वर ज्ञान के आनंद में रहते मगन।
सद्ज्ञान रूपी पष्प रस का भोग करते भ्रमर बन॥ 8 ॥

हृदय में कर्म विपाक का चिन्तन करता हुआ जो समभाव धारण कर लेता है, वही योगी ज्ञानानन्द रूप पराग को भ्रमरवत् भोग करता है।

The accomplished sage watches with equanimity the ups and downs in life recognizing them to be the result of fruition of accumulated karma. They are at peace with themselves and like honeybees constantly suck the juice of knowledge.

भवोद्वेग-22

यस्य गम्भीरमध्यस्याऽज्ञानवज्रमयं तलम्।
रुद्धा व्यसनशैलोघैः, पन्थानो यत्र दुर्गमाः ॥ 1 ॥

है मध्य भाग विशाल विश्व समुद्र का यह रूप है।
अज्ञान रूपी वज्र से निर्मित सबल तल कूप है॥
संकट स्वरूपी पर्वतों से रुद्ध पथ दुर्धर्ष है।
जग रूप देख विराग भावों का बने उत्कर्ष है॥ 1 ॥

इस संसार रूप समुद्र का मध्यभाग बड़ा गम्भीर है, अज्ञान रूप वज्र से बना इसका तल-प्रदेश हैं। इसमें संकट रूपी पर्वतों के समूह से अवरुद्ध अनेक दुर्गम मार्ग हैं।

Emotions

The central part of this ocean like mundane world is extremely tranquil with the deeps made up of diamond hard ignorance. There are paths made innavigable by ranges of mountains of miseries.

पातालकलशा यत्र, भूतास्तृष्णामहानिलैः ।
कषायाश्चित्तसंकल्पवेलावृद्धिं वितन्वते ॥ 2 ॥

तृष्णा स्वरूपी महा वायु से प्रपूरित कलश है।
सामान्य नहिं क्रोधादि रूप कषाय का हो दरस है॥
वे कलश भरती नित करे संकल्प की मन में सदा।
संसार तो निस्सार है निस्सार रहता सर्वदा॥ 2 ॥

जहाँ तृष्णा रूप महावायु से भरे पाताल कलश रूप चारों कषाय (क्रोधादि) मन के संकल्प रूप भरती का विस्तार है।

There, in this world, the great winds of desires are filled in the four urns of passions (anger, conciet, illusion, and greed). The urns are regularly replenised with feelings that strengthen the notion that this world is meaningless and transitory.

स्मरौर्वाग्निर्ज्वलत्यन्तर्यत्र स्नेहेन्धनः सदा।
यों घोररोगशोकादिमत्स्यकच्छपसंकुलः ॥ 3 ॥

है मध्य इंधन स्नेहरूपी काम वडवानल जले।
दुख रोग शोकादिक मछलियाँ काछवे उसमें पले॥
संसार ऐसा कीच है रे जीव ! अब तूं जाग जा।
फँसना नहीं जग बंध में सब ज्ञात कर तूं भाग जा॥ 3 ॥

जिसके मध्य में हमेशा स्नेह रूप ईंधन से युक्त काम रूप दावानल जलता रहता है। जो भयंकर रोग शोकादि रूप मछलियो/काछ्वों से भरा हुआ है।

The fathomless expanse of this ocean like world is live with fire of lust fueled by affection Fishes and turtles of diseases and sufferings abound there. This world is such a quagmire that, O' ye being, run if you can.

दुर्बुद्धिमत्सरद्रोहैर्विद्युद्दुर्वातगर्जितैः ॥
यत्र सांय्यात्रिका लोकाः, पतन्त्युत्पातसङ्कटे ॥ 4 ॥

चमके गगन विद्युत् सदा तूफान गर्जन हो रहा।
उन नाव बैठ यात्रियों को भास संकट हो रहा॥
मत्सर तथा है दुष्ट बुद्धि द्रोह रूप तूफान है।
ऐसे जगत के प्रति हृदय होता नहीं सम्मान है॥ 4 ॥

दुर्बुद्धि, मत्सर तथा द्रोह रूप जहाँ बिजलियाँ चमकती हैं, भयंकर तूफान चलता है, गर्जना होती है और इस कारण समुद्र मे सफर करने वाले लोग तूफान रूप संकट में फँस जाते हैं।

Those who traverse this ocean are caught in the storms of disasters and calamities Waywardnes, jealousy and hostility strike them like blitz and bog them down with fearsome roars

ज्ञानी तस्माद् भवाम्भोधेर्नित्योद्विग्नोऽतिदारुणात्।
तस्य सन्तरणोपायं सर्वयत्नेन कांक्षति॥ 5॥

ऐसे भयंकर जगत सागर का जिसे हो भान है।
उद्विग्न बन वे सोचते जिनके हृदय सद्ज्ञान है॥
कैसे तिरूँ संसार पारावार को क्या मैं करूं।
वे चाहते मन में कि बस अब शीघ्र भवसागर तरुं॥ 5॥

ऐसे भयंकर संसार समुद्र से उद्विग्न बने ज्ञानी पुरुष हमेशा पूर्ण प्रयत्न से ऐसे सागर को तिरने की इच्छा रखते है।

Perturbed by such a dangerous ocean like world the discerning persons constantly endeavour to ford across, and seek salvation.

तैलपात्रधरो यद्वद्राधावेधोद्यतो यथा।
क्रियास्वनन्यचित्तः स्याद्, भवभीतस्तथा मुनिः ॥ 6 ॥

कर तैल पूरित पात्र हो वह सावधान सदा रहे।
जो वीर राधावेध साधे चित्त में जागृति बहे॥
भय हो उन्हें तलवार का त्यों जगत का मुनि को हो भय।
भवभीत मुनि चारित्र में हो सावधान सदा हृदय॥ 6 ॥

जिस प्रकार तेल के पात्र को धारण करने वाला, राधावेध साधने के लिये तत्पर बना व्यक्ति अपनी-अपनी क्रिया में जिस प्रकार अनन्य चित्त वाला अर्थात् पूर्ण एकाग्र चित्त हो जाता है, उसी प्रकार संसार से भय प्राप्त साधु चारित्र क्रिया में पूर्ण एकाग्र चित्त हो जाता है।

As an oil-bowl courier or a sharp-shooter maintains undistracted concentration to achieve his goal so does a discerning sage, wary of the world, disciplines his heart and mind with single minded concentration.

विषं विषस्य वह्नेश्च, वह्निरेव यदौषधम्।
तत्सत्यं भवभीतानामुपसर्गेऽपि यन्न भीः ॥ 7 ॥

विष नाश विष ही करे अग्नि अग्नि नाश करे सदा।
भवभीत मुनि उपसर्ग के भय से न डरता है कदा॥
संसार भय से जो डरे उपसर्ग से उनको न डर।
हँसते हुए उपसर्ग सहते मानते हैं कर्म–हर॥ 7 ॥

विष ही विष का तथा अग्नि ही अग्नि का औषध बनता है, यह सत्य है। उसी प्रकार संसार से भयभीत बनी आत्मा को उपसर्ग प्राप्त होने पर भी कोई भय नही होता।

As it is true that treatment of a poison is another poison and a fire is quashed with the help of another fire so also it is true that in order to be free from fears of terrible afflictions on the path of liberation one has to be deeply frightened by this mundane world

स्थैर्यं भवभयादेव, व्यवहारे मुनिर्व्रजेत्।
स्वात्मारामसमाधौ तु, तदप्यंन्तर्निमज्जति ।। 8 ।।

व्यवहार नय से साधु भव से भीत हो स्थिरता लहे।
पर जब मुनीश्वर आत्मरति निजभाव गंगा में बहे।।
तब आत्म भाव समाधि में भवभय जरा रहता नहीं।
भय जगत सकल विलीन हो जावे समाधि में सही ।। 8 ।।

व्यवहार नय से संसार के भय से ही साधु स्थिर बनता है। परन्तु, अपनी आत्मा की रति रूप समाधि में लीन होने पर वह भय भी अंदर समाप्त हो जाता है।

Practically speaking it is the fear of the world that compels a sage to be indrawn and still. But as he gradually becomes engrossed in romancing with his inner self this fear evaporates.

लोक-संज्ञा-त्याग-२३

प्राप्तः षष्ठं गुणस्थानं, भवदुर्गाऽद्रिलंघनम्।
लोसंज्ञारतो न स्यान्मुनिर्लोकोत्तरस्थितिः ॥ 1 ॥
संसार रूप विषम पर्वत लांघने तैयार है।
गुण स्थान छट्ठा प्राप्त कर मुनि मुक्त शुद्धाचार है॥
मुनि लोक-उत्तर मार्ग पर चलता चले वो ना थके।
ऐसा मुनीश्वर लोक संज्ञा में न प्रीति कर सके॥ 1 ॥

संसार रूप विषम पर्वत को लांघने रूप छट्ठे गुण स्थानक को प्राप्त, लोकोत्तर मार्ग|स्थित साधु लोकसंज्ञा में रत अर्थात् प्रीति वाला नही होता।

Sacrifice of worldly indulgenees

A Muni having achieved the sixth level of knowledge and purity, i.e. the sixth 'Gunsathan' is thus in a state of preparedness for crossing over the level of life on this earth which is akin to an unsurmountable mountain

Such a muni is not entrenched in worldly pleasures and forges forward on the path to attaining higher levels or 'Gunasthans'

यथा चिन्तामणिं दत्ते, बठरो बदरीफलैः ।
हा हा जहाति सद्धर्मं, तथैव जनरञ्जनैः ॥ 2 ॥

ज्यों मूर्ख व्यक्ति रत्न देकर बोर ले प्रमुदित बने।
त्यों लोक- रंजन में मुनि जो डूबता है हर क्षणे॥
हा ! मूढ़ कैसा है मुनि जो लोकरंजन ही करे।
वो मूर्ख त्यागे धर्म को निज आत्म गुण संज्ञा हरे॥

मूर्ख व्यक्ति जिस प्रकार रत्न देकर बदले में बोर लेता है, वैसे ही मूढ़ व्यक्ति लोकरंजन के लिये सद्धर्म का त्याग कर देता हैं।

Such a Muni who indulges in entertaining the masses with his powers is actually exchanging his gems for berries. For such ar muni gradually loses his spiritual' prowess and gets enmeshed in worldly indulgences

लोकसंज्ञामहानद्यामनुश्रोतोऽनुगा न के।
प्रतिस्त्रोतोऽनुगस्त्वेको, राजहंसो महामुनिः ॥ 3 ॥

विस्तृत नदी है लोक- रंजन की भयंकर है बड़ी।
धारा विकट उसमें बहे सारे मनुज हर पल घड़ी ॥
पर एक सच्चे जो महामुनिराज निज में राजते।
वो राजहंस समान धारा के समक्ष हि चालते ॥ 3 ॥

लोक संज्ञा रूप विशाल नदी में लोक प्रवाह का अनुसरण करने वाले कौन नही है ? जबकि प्रवाह के सामने चलने वाले राजहंस जैसे तो महामुनीश्वर एक ही हैं।

This river-like desire to tantalize the populace with one's spiritual powers is a dangerous one. Many an aspirant has had to flow along with its strong current. Only a Swan-like, mentally poised, great muni can stand against the strong current of such indulgences.

लोकमालम्ब्य कर्तव्यं, कृतं बहुभिरेव चेत्।
तदा मिथ्यादृशां धर्मो, न त्याज्यः स्यात्कदाचन ॥ 4 ॥

लोकानुसारी बन बहुत नर जो करे वो सत्य है।
ऐसा उचित नहीं मानना इसमें न कोई तथ्य है॥
यदि मान लें तो बहुत नर से आचरित जो धर्म है।
मिथ्यात्वियों का धर्म फिर नहीं त्याज्य होता कर्म है ॥ 4 ॥

लोक का आलंबन लेकर यदि अधिक मनुष्यों द्वारा किया गया काम ही योग्य हो तब तो मिथ्यादृष्टि लोकों का धर्म भी त्याज्य नही माना जा सकता।

To do what the majority does is not always a correct and sensible decision. For if it were to be so then perhaps it would not be advisable to give up the much beaten path of falsehoods and non-righteousness.

श्रेयोऽर्थिनो हि भूयांसो, लोके लोकोत्तरे न च।
स्तोका हि रत्नवणिजः, स्तोकाश्च स्वात्मसाधकाः ॥5॥

मोक्षाभिलाषी लोक में लोकोत्तरे भी अल्प है।
जो लोक-रंजन ना करें मुनि नर बहुत ही स्वल्प है॥
व्यापारकर्ता रत्न के होते जगत में अल्प ज्यों।
निज आत्मसाधक साधनारत साधु होते स्वल्प त्यों॥5॥

निश्चित ही लोक मे/लोकोत्तर मे मोक्ष के अभिलाषी थोड़े ही हैं। जिस प्रकार रत्नो के व्यापारी थोड़े ही होते हैं उसी प्रकार अपनी आत्मा की साधना करने वाले भी थोड़े ही होते हैं।

Few are the people desiring 'Moksha' (Saluation), fewer still who do not cater to the fancies of the populace. Just as there are very few traders in the field of gems and jewles, so there are very few sadhus in a genuine pursuit of salvation.

लोकसंज्ञाहता हन्त, नीचैर्गमनदर्शनैः।
शंसयन्ति स्वसत्याङ्ग-मर्मघातमहाव्यथाम्॥ 6 ॥

ज्यों जीव तन में दर्द हो तब मन्द गति से चालता।
मुख निम्न कर यों प्रगट करता दर्द की घन दासता॥
निज सत्य व्रत को भंग करते लोकसंज्ञा के लिये।
वे वेदना को प्रकट करते आत्म के बुझते दिये॥ 6 ॥

लोक सज्ञा से आहत हुए लोगो के धीरे चलने से व नीचे देखने से अपने सत्य व्रत रूप अंग में मर्म प्रहार की महा व्यथा प्रकट होती है।

Just like a man in physical anguish moves slowly, his head bent, so those who detract from the path of righteousness for the sake of popularity, appear to possess a soul dimmed with spiritual anguish.

आत्मसाक्षिकसद्धर्मसिद्धौ किं लोकयात्रया।
तत्र प्रसन्नचन्द्रश्च, भरतश्च निदर्शनम्॥ 7 ॥

नृप प्रसन्नचन्द्र ऋषि प्रवर नृप भरत का दृष्टान्त है।
निज आत्म अनुभव प्राप्त कर बनते सदा वे शान्त हैं॥
निज बोध दायक धर्म का वर मर्म प्राप्ति हो जिसे।
नहिं कामना रहती हृदय में लोकसंज्ञा की उसे॥ 7 ॥

प्रसन्नचन्द्र राजर्षि व भरत महाराजा के दृष्टान्त से यह स्पष्ट है कि आत्म साक्षी से युक्त सत्य धर्म की सिद्धि अर्थात् प्राप्ति होने के बाद लोक व्यवहार का क्या काम है ?

The lives of Rishi Prasanna Chandra and King Bharat exemplify how worldly indulgences and popularity gained thereby are redundent for those who have achieved self realization.

लोकसंज्ञोज्झितः साधुः, परब्रह्मसमाधिमान् ॥
सुखमास्ते गतद्रोहममंतामत्सरज्वरः ॥ 8 ॥

जो लोक संज्ञा रहित है, पर ब्रह्म में सुसमाधि है।
हुई नाश मत्सर द्रोह ममता रूप व्याधि उपाधि है ॥
ऐसे मुनीश्वर जगत में रहते परम सुख में सदा।
उनके चरण में वन्दना हो भावभीनी सर्वदा ॥ 8 ॥

लोकसंज्ञा से रहित, पर ब्रह्म मे समाधिरत, द्रोह, ममता, मत्सर (गुण-द्वेष) रूप ज्वर नाश कर दिया है जिन्होने, ऐसे साधु सुख मे रहते हैं।

Those who are detatched from worldly indulgences stay transfixed in the 'Brahma'. Such munis are worthy of profound salutations for they are not afflicted with ailments like malice, over-indulgance and vindictiveness.

शास्त्र-दृष्टि–24

चर्मचक्षुर्भृतः सर्वे, देवश्चाऽवधिचक्षुषः।
सर्वतश्चक्षुषः सिद्धाः,साधवः शास्त्रचक्षुषः॥ 1॥

सारे मनुज निज चर्म निर्मित चक्षुओं से देखते।
सुर सकल अवधि ज्ञान रूपी चक्षुओं से पेखते॥
श्री सिद्ध के कैवल्य श्रुत ही आँख होती है महा।
वर शास्त्र ही चक्षु बने मुनि के यों शास्त्रों में कहा॥ 1॥

सभी मनुष्य चर्म चक्षु के धारक है, देव अवधि ज्ञान रूप चक्षु के धारक हैं, सिद्ध सर्व आत्म प्रदेशों के केवल ज्ञान-केवल दर्शन रूप चक्षु वाले हैं, जबकि साधुओ के पास तो शास्त्र रूप चक्षु होते हैं।

View of the scriptures

Odinary human beings use their eyes to see, and gods use their extra-sensory perception. Those belonging to a higher level, like 'Siddhas' and Kewalis depend on the ultimate perception and knowledge of their state of omniscience. But the Sadhus see through the eyes of the scriptures.

पुरःस्थितानिवोर्ध्वाधस्तिर्यग्लोकविवर्तिनः ।
सर्वान् भावानवेक्षन्ते, ज्ञानिनः शास्त्रचक्षुषा ॥ 2 ॥

ज्ञानी पुरुष श्रुत चक्षु से तीनों ही लोक निहारते।
तिर्यक् अधो औ ऊर्ध्व में जो हो रहा सब भासते ॥
परिणाम सारे भाव को वे देखते प्रत्यक्ष सम।
मुनि शास्त्र की ही आँख से देखे सदा श्रुत में ही रम ॥ 2 ॥

ज्ञानी पुरुष शास्त्र रूप चक्षु से ऊर्ध्व, अधो व तिर्यक् लोक् में परिणमित हो रहे, सभी भावों को प्रत्यक्ष देखते हैं।

The knowledgeable man, with eyes of the 'Shrutas' observe all that transpires in the three worlds of 'Tiryak', 'Adho' and 'Urdhva ' (the lowermost, the middle and the top most planes of life) as clearly as clairvoyants observe life on earth.

शासनात् त्राणशक्तेश्च, बुधैः शास्त्रं निरुच्यते।
वचनं वीतरागस्य, तत्तु नाऽन्यस्य कस्यचित्॥ 3 ॥

उपदेश हित का जो करे वह शास्त्र कहलाता सदा।
उपदेश दे हर जीव की रक्षा करे वह सर्वदा॥
इस शास्त्र रूपी शब्द की व्युत्पत्ति पंडित यों करे।
को अन्य ना, ये वचन सारे वीतरागी उच्चरे॥ 3 ॥

'हितोपदेश व रक्षा का सामर्थ्य' ऐसी 'शास्त्र' शब्द की व्युत्पत्ति पंडित जन करते हैं। (वास्तव में) वीतराग के वचन ही शास्त्र हैं, किसी अन्य के नहीं।

Pundits interpret the word 'Shastras' as that source of literature which imparts knowledge and protects all beings. The words of 'Shastras' are none other than those pronounced by the saints ('Vitaragis') themselves.

शास्त्रे पुरस्कृते तस्माद्, वीतरागः पुरस्कृतः ।
पुरस्कृते पुनस्तिस्मिन् , नियमात् सर्वसिद्धयः ॥ 4 ॥

यदि शास्त्र वर होते पुरस्कृत हो पुरस्कृत जिन सकल।
हो वीतराग अगर पुरस्कृत सिद्धि प्राप्त करे विमल॥
ये वीतराग ही शास्त्र है ये शास्त्र ही वीतराग है।
प्रति शास्त्र मेरे हृदय में उमड़ा भरा अनुराग है॥

शास्त्र को पुरस्कृत किया अर्थात् वीतराग को पुरस्कृत किया। वीतराग को स्वीकार किया अर्थात् शास्त्र को स्वीकार किया। इसका अर्थ है—शास्त्र वीतराग ही है और वीतराग ही शास्त्र है। इस प्रकार नियम से सर्व सिद्धि होती है।

One revels at the fact that if the 'Shastras' are appreciated than it amounts to the 'Vitarags' (the all knowing Sadhus) being appreciated. For the Vitarags and the shastras are virtually synonymous in their essence.

अदृष्टार्थेऽनुधावन्तः, शास्त्रदीपं बिना जडाः।
प्राप्नुवन्ति परं खेदं, प्रस्खलन्तः पदे पदे ॥ 5 ॥

दीपक बिना जो चल रहे वे ठोकरें ही खा रहे।
खा ठोकरें उनके हृदय में खिन्नता पीड़ा बहे ॥
त्यों शास्त्र रूपी दीप बिन जो मोक्ष की यात्रा करे।
अविवेकपूरित वे मनुज हर कदम पर ठोकर वरे ॥ 5 ॥

शास्त्र रूप दीपक के अभाव मे अदृष्ट (परोक्ष) अर्थ में पीछे दौड़ते मूढ़ मनुष्य दर-दर पग-पग पर ठोकरे खाते हैं और खिन्न होते है।

A man who walks in the dark, without a lamp in hand, keeps getting hurt and consequently feels depressed and frustrated Likewise, one who aspires to walk on the path of 'Moksha' (Salvation) without the aid of the lamp of shastras finds his efforts frustrated at every step.

गृद्धोञ्छाद्यपि शास्त्राऽऽज्ञानिरपेक्षस्य नो हितम्।
भौतहन्तुर्यथा तस्य, पदस्पर्शनिवारणम्॥ 6 ॥

आज्ञा न माने शास्त्र की पर गौचरी सुविशुद्ध है।
हितकर नहीं शुद्ध गौचरी मुनि वो तो पूर्ण अशुद्ध है॥
ज्यों भौत मारक को किया पद स्पर्श का नृप ने मना।
विपरीत चलता शास्त्र के हितकर नहीं तस साधना॥ 6 ॥

शास्त्र आज्ञा रहित स्वच्छंद मति शुद्ध गौचरी वगैरह बाह्य क्रिया करता है, पर वह हितकारक नहीं है। जैसे (राजा का) भौतमति के मारक को ऐसा आदेश देना-भौतमति के पॉव का स्पर्श मत करना।

Despite feeding on daily beggings of pure food from door to door, a sadhu can not achieve exaltation if he does not pursue the intrinsic teachings of the shastras. It is as absurd as the kings order to the killer of Bhautmati not to touch his feet.

अज्ञानाऽहिमहामंत्रं, स्वाच्छन्द्यज्वरलंघनम्।
धर्मारामसुधाकुल्यां, शास्त्रमाहुर्महर्षयः ॥ 7 ॥

अज्ञान रूपी सर्प-जहर विनाश मंत्र समान है।
स्वच्छंदता रूपी महाज्वर नाश 'लंघन' मान है॥
सध्दर्म रूपी बाग के सुविकास अमृत नीक सम।
महिमा सदा यों शास्त्र की ऋषि साधु सब गाते परम ॥ 7 ॥

ये शास्त्र अज्ञान रूप सर्प का जहर उतारने मे महामंत्र समान है। स्वच्छन्ता रूप ज्वर का नाश करने मे उपवास समान हैं। धर्म रूप बगीचे में अमृत की नीक समान हैं। ऐसा ऋषियों का कथन है।

"These scriptures are like magic potions against the venom of the snake of ignorance. They are like a fast for the cure of fever of indiscipline. They are like vessels of nectar to help growth in the garden of religion." So say the sages.

शास्त्रोक्ताचारकर्ता च, शास्त्रज्ञः शास्त्रदेशकः।
शास्त्रैकदृग् महायोगी, प्राप्नोति परमं पदम्॥ 8 ॥

वैसा ही जो आचार पाले शास्त्र में जैसा कहा।
सत् शास्त्र को जो जानता उपदेश भी वैसा महा।
है एक दृष्टि शास्त्र में ऐसे मुनीश्वर धन्य हैं।
वे मोक्ष को पाते उन्हें हो नमस्कार अनन्य है॥ 8 ॥

शास्त्र निर्दिष्ट आचार का पालन करने वाला, शास्त्रज्ञ, शास्त्र का उपदेश करने वाला, तथा शास्त्र में एक दृष्टि रखने वाला महान् योगी परम पद को प्राप्त करता है।

Munis who keep an unfaltering faith in the shastras are sure to get liberated and are worthy of salvation.

परिग्रह-त्याग-२५

न परावर्त्तते राशेर्वक्रतां जातु नोज्झति।
परिग्रहग्रहः कोऽयं, विडम्बितजगत्त्रयः ॥ 1 ॥

पीछे चले निज राशि से ना अग्र भी बढ़ता नहीं।
निज वक्रता का भी कभी परित्याग वो करता नहीं॥
तीनों जगत का कर रहा ऐसी सदैव विडम्बना।
ऐसा परिग्रह रूप ग्रह है कौन नित्य विचारना॥ 1 ॥

जो राशि से पीछे नहीं हटता, अपनी वक्रता कभी छोड़ता नहीं, जिसने तीनों जगत को विडम्बना दी है, ऐसा परिग्रह रूप ग्रह और कौन-सा है ?

The Desire for Possessions

With a vice like tenacity it never detracts from its orbit around the three worlds and its evil influence thereon. This desire for possessions is like the worst amongst the orbiting planets.

परिग्रहग्रहाऽऽवेशाद्दुर्भाषितरजःकिराम्।
श्रूयन्ते विकृताः किं न, प्रलापा लिङ्गिनामपि ॥ 2 ॥

परिग्रह स्वरूपी ग्रह प्रवेशे आत्म में मुनिराज भी।
उत्सूत्र-भाषण धूल फेंके साक्षी सकल समाज भी॥
विकृति. भरे बकवाद सागर में परिग्रही मुनि बहे।
परिग्रह से मुनि का हाल ये है, दूसरों की क्या कहें॥ 2 ॥

परिग्रह रूप ग्रह के प्रवेश से उत्सूत्र भाषण रूप धूल उड़ाते वेषधारियों का विकृत प्रलाप क्या सुनने में नहीं आता ?

Do you not hear the irrational and distorted talks of even those in the garb of a mendicant when the evil influence of desire for possessions creeps into their mind.

यस्त्यक्त्वा तृणवद्बाह्यमान्तरं च परिग्रहम्।
उंदास्ते तत्पदाम्भोजं, पर्युपास्ते जगत्त्रयी ॥ 3 ॥

तृण सम समझकर सर्व परिग्रह को सदा जो छोड़ते।
हो बाह्य या अन्तर् परिग्रह से सदा मुख मोड़ते ॥
परिग्रह समक्ष रहे ऋषीश्वर उदासीन हृदय सदा।
तीनों जगत उन साधु जन के चरण सेवे सर्वदा ॥ 3 ॥

जो बाह्य-आभ्यन्तर परिग्रह को तृण समान छोड़कर उदासीन रहता है उसके चरण कमल को तीनों जगत पूजता है।

Those who consider the worldly possession to be not worth a straw, those who eschew from all sense of possession–internal and external–and those who are generally disinterested in possessions, such sadhus are revered by all.

चित्तेऽन्तर्ग्रन्थगहने, बहिर्निर्ग्रन्थता वृथा।
त्यागात्कञ्चुकमात्रस्य, भुजङ्गो न हि निर्विषः ॥ 4 ॥

अन्तर् परिग्रह से हृदय यदि विकल है तो व्यर्थ है।
निर्ग्रन्थ केवल बाह्य है उसका परम क्या अर्थ है॥
ना सर्प केवल केंचुली के त्याग से विष रहित हो।
त्यों साधु भी वो है न जो अन्तर् परिग्रह सहित हो ॥ 4 ॥

यदि अन्तरंग परिग्रह से मन व्याकुल है तो बाह्य निर्ग्रन्थत्व व्यर्थ है। मात्र कांचली छोड़ देन से सर्प विष रहित नहीं बन जाता।

If the heart is plagued by a craving for possessions, wearing the garb of a monk is meaningless. A snake does not loose its poison just by shedding its skin.

त्यक्ते परिग्रहे साधोः, प्रयाति सकलं रजः।
पालित्यागे क्षणादेव, सरसः सलिलं यथा॥ 5॥

सरवर भरा है नीर से पर पाल जो टूटे यदा।
पानी सकल बह जाय फिर इक बूंद भी न रहे तदा॥
परित्याग करते परिग्रह का सर्वथा त्यों साधु जब।
परित्याग करते ही मुनि पल में विनाशे पाप सब॥ 5॥

परिग्रह का त्याग करने से साधु का पाप रूपी मैल क्षण में ही नष्ट हो जाता है। जिस प्रकार पाल टूटने से तालाब का पानी चला जाता है।

As when a dam is broken not a drop of water remains in the lake, likewise when the desire for possessions is subdued all the dirt of sins is washed in no time.

त्यक्तपुत्रकलत्रस्य, मूर्च्छामुक्तस्य योगिनः।
चिन्मात्रप्रतिबद्धस्य, का पुद्गलनियंत्रणा॥ 6॥

छोड़ा जिन्होंने पुत्र नारी को हो ममता से रहित।
मुख मोड़ जग परिग्रह से साधे आत्म को निज बल सहित॥
वे ज्ञान में ही रत रहे निज भान में ही सर्वदा।
योगी परम उनको न बंधन पुद्गलों का सर्वथा॥ 6॥

जिसने पुत्र पत्नी का त्याग किया है, जो ममत्व से रहित है, और ज्ञान मात्र में आसक्त है, ऐसे योगी को पुद्गल का बंधन क्या होगा?

He who gives up the attachement for his son and wife alongwith the feeling of fondness and looses himself into the quest for knowledge goes beyond all mundane ties.

चिन्मात्रदीपको गच्छेत्, निर्वातस्थानसन्निभैः।
निष्परिग्रहतास्थैर्यं, धर्मोपकरणैरपि ॥ 7 ॥

सद्ज्ञान दीपक रूप मुनि अप्रमत्त होता सर्वदा।
विरहित पवन के स्थान जैसे स्थिर बने रहते सदा॥
चारित्र में सहयोग हेतु पास होते उपकरण।
फिर भी परिग्रह रहित ही है परम स्थिर वे साधुगण ॥ 7 ॥

'पवन रहित स्थान' रूप धर्म के उपकरणों से ज्ञान मात्र दीपक रूप (मुनि) परिग्रह त्याग रूप स्थिरता को प्राप्त करता है।

Like a lamp that burns steadily at a place having air without turbulance, a Sadhu remains steadfast in his detachment despite all amenities at his disposal just due to the absence of the desire for possesions.

मूर्च्छाच्छन्निधियां सर्वं, जगदेव परिग्रहः।
मूर्च्छया रहितानां तु, जगदेवाऽपरिग्रहः ॥ 8 ॥

मति पर लगा जिनके पटल, अति मूर्च्छना का वे कहें।
सारा जगत ही है परिग्रह इन विचारों में बहे॥
लेकिन रहित जो मूर्च्छना से भाव उनके यों जगे।
सारा जगत परिग्रह रहित ही साधुओं को यों लगे॥ 8 ॥

मूर्च्छा से जिसकी बुद्धि आच्छादित है, उनके लिये सर्व जगत ही परिग्रह है। मूर्च्छा रहित व्यक्तियों के लिये तो संसार ही अपरिग्रह रूप है।

For people whose minds are under the influence of illusion of desires the whole world is there for their possessing. But for those who are above this state of illusion the entire world is the object of detachment.

अनुभव-26

सन्ध्येव दिनरात्रिभ्यां, केवलश्रुतयोः पृथक्।
बुधैरनुभवो दृष्टः, केवलाऽर्काऽरुणोदयः ॥ 1 ॥

संध्या अलग है दिवस से भी अलग है निशि से भी वह।
श्रुत ज्ञान से कैवल्य से भी अलग अनुभव ज्ञान कह ॥
कैवल्यज्ञान स्वरूप रवि के अरुण उदय समान है।
पंडितजनों से दृष्ट ऐसा परम अनुभव ज्ञान है ॥ 1 ॥

जिस प्रकार दिन और रात में संध्या अलग है, उसी प्रकार केवल ज्ञान और श्रुत ज्ञान से भिन्न अनुभव केवल ज्ञान रूप सूर्य के अरुणोदय के समान ज्ञानियों ने देखा है।

Experience

As the twilight is different from the day and the night, so is 'kewalya' (state of omniscience) from the knowledge of the shrutas. Sages reveal that the experience of kewalya is like beholding the sun at dawn.

व्यापारः सर्वशास्त्राणां, दिक्प्रदर्शनमेव हि।
पारं तु प्रापयत्येकोऽनुभवो भववारिधेः॥ 2 ॥

सब शास्त्र आगम जगत के दिशि मात्र का सूचन करे।
क्या सत्य क्या झूठ है ये तत्त्व सारे उच्चरे॥
पर पार पारावार भव से परम अनुभव ही करे।
अनुभूति रस ही आत्म में शिव हर्ष का झरणा झरे॥ 2 ॥

निश्चय ही सभी शास्त्रों का कार्य दिशा दिखाना ही है, लेकिन संसार समुद्र से पार लगाने वाला तो एक अनुभव ही है।

Truly, the task of all the scriptures and shastras is to guide one to the path of righteousness, however, it is experience alone that actually takes one across this sea of life.

अतीन्द्रियं परं ब्रह्म, विशुद्धाऽनुभवं विना।
शास्त्रयुक्तिशतेनाऽपि, नगम्यं यद् बुधा जगुः ॥ 3 ॥

नहिं जान सकते इन्द्रियों से ऐसी अनुपम आतमा।
शास्त्रों की युक्ति से भी जानी जा सके ना आतमा॥
पंडित सकल कहते कि तुमको प्राप्त करना आतमा।
अनुभव बिना ना जान सकते ब्रह्म रूपी आतमा॥ 3 ॥

इन्द्रियों द्वारा अगोचर ऐसा परमात्मा का स्वरूप शास्त्रो की सैकड़ों युक्तियों द्वारा भी नही जाना जा सकता, उसे मात्र अनुभव से ही जाना जा सकता है ऐसा पंडित कहते है।

The senses are not adequate to enable one to understand the 'atman' or soul which is beyond compare. The logic of the shashtras too is not sufficient. Sages declare that it is impossible to understand the 'Brahma' like soul without direct experience.

ज्ञायेरन् हेतुवादेन, पदार्थं यद्यतीन्द्रियाः।
कालेनैतावता प्राज्ञैः, कृतः स्यात्तेषु निश्चयः ॥ 4 ॥

जो है अतीन्द्रिय तत्त्व उनका युक्तियों से ज्ञान हो।
इतने समय में पंडितों को फिर कभी का भान हो ॥
निर्णय कभी का कर लिया होता कि आत्मा चीज क्या ?
अनुभव बिना ना जान सकते पेड़ क्या है बीज क्या ? ॥ 4 ॥

यदि युक्तियो द्वारा अतीन्द्रिय पदार्थो का बोध संभव होता तो इतने समय में पंडितों ने उन अतीन्द्रिय पदार्थो के विषय में निश्चय कर लिया होता।

Had it been possible to understand that which is ertra-sensory through logic and reasonings the pundits would have by now known everything about the 'atman' (Soul) But the fact is that without experience one cannot comprehend what a seed is and what a tree is.

केषां न कल्पनादर्वी, शास्त्रक्षीरान्नेगाहिनी।
विरलास्तद्रसास्वादविदोऽनुभवजिह्वया ॥ 5 ॥

ये शास्त्र आगम सकल जो मधु स्वाद पूरित क्षीर है।
उसमें चलाते कल्पना का चमच कई मति वीर हैं॥
अनुभव स्वरूपी जीभ से आस्वाद विरले ही करे।
अनुभव सदा ही मुख्य है उससे ही भव सागर तरे ॥ 5 ॥

किसका कल्पना रूप चम्मच शास्त्र रूपी खीर में प्रविष्ट नही होता ? लेकिन अनुभव रूप जिह्वा के द्वारा शास्त्र के आस्वाद को जानने वाले तो विरले ही होते हैं।

Which spoon of imagination does not take a dip into the sweet dish of the shastras But in absence of the tongue of experience who can get the true taste of the shastras.

पश्यतु ब्रह्म निर्द्वन्द्वं, निर्द्वन्द्वानुभवं विना।
कथं लिपिमयी दृष्टिर्वाङ्मयी वा मनोमयी ॥ 6 ॥

मनलिपि मयी या वाङ्मयी दृष्टि से आत्म दिखे नहीं।
प्रत्यक्ष अनुभव से मुनि साक्षात्कार करे सही॥
निर्द्वन्द्व अनुभव के बिना निर्द्वन्द्व ब्रह्म दिखे नहीं।
अनुभव बिना निज रूप को नर प्राप्त करता है नहीं ॥ 6 ॥

राग द्वेषादि क्लेश रहित शुद्ध अनुभव ज्ञान के बिना मात्र शास्त्र दृष्टि, वाणी रूप दृष्टि अथवा मनन रूप दृष्टि उस निर्द्वन्द्व राग द्वेष रहित आत्मा को कैसे देख सकती है।

That unambiguous soul devoid of any attachment or aversion is beyond the reach of visual, verbal, or mental perception in absence of sublime and direct experience that is free of pollutants like attachment, aversion etc.

न सुषुप्तिरमोहत्वान्नापि च स्वापजागरौ।
कल्पनाशिल्पविश्रान्तेस्तुर्यैवानुभवो दशा ॥ 7 ॥

अनुभव दशा है मोह विरहित गाढ़ निद्रा है नहीं।
अनुभव दशा है, कल्पना का शिल्प भी चलता नहीं॥
इसलिये स्वप्न भी है न है ना जागृति फिर क्या दशा।
निद्रा न जागृति स्वप्न है, अनुभव परम चौथी दशा ॥ 7 ॥

यह अनुभव मोह रहित होने से निद्रा रूप सुषुप्ति दशा नहीं है, कल्पना रूप कला का भी इसमें अभाव होने से स्वप्न अथवा जागृत दशा भी नही हैं। यह तो चौथी दशा ही है।

This direct experience of knowing the soul or the self being devoid of attachment, is not a sleep like state. Being devoid of imagination and fantasies it is neither a dream like state nor wakefulness It is definitely a fourth dimension

---

अधिगत्याखिलं शब्दब्रह्म शास्त्रदृशा मुनिः।
स्वसंवेद्यं परं ब्रह्मानुभवेनाधिगच्छति ॥ 8 ॥

मुनि शास्त्र रूपी दृष्टि से सब ब्रह्म को जानता।
औ दृष्टि अनुभव से परम निज आत्म को पहिचानता ॥
निज के परम आलोक से ही आत्म जाना जा सके।
अनुभव तिमिर हर से ही योगी आत्म अमृत पा सके ॥ 8 ॥

मुनि शास्त्र दृष्टि से सकल शब्द ब्रह्म को जानकर अनुभव के द्वारा स्वयं प्रकाश ऐसे परम ब्रह्म अर्थात् परमात्मा स्वरूप को जानता है।

With the eyes of the shastras the Muni gains verbal knowledge of the 'Brahma'. Through the eyes of experience he encounters the 'Self'. It is only through the eternal light of one's experience that one gains access to the nectar of the knowledge of the 'Self'.

योग–27

मोक्षेण योजनाद्योगः, सर्वोऽप्याचार इष्यते।
विशिष्य स्थानवर्णार्थालम्बनैकाग्र्यगोचरः ॥ 1 ॥

जो आतमा को मोक्ष के सह जोड़ता वह योग है।
आचार इस कारण धरम के सब कहाते योग हैं॥
है स्थान वर्ण तथा अरथ एकाग्रता आलंबनम्।
ये भेद पांचों योग के सुविशेष शास्त्र विवेचनम्॥ 1 ॥

मोक्ष के साथ आत्मा को जोड़ने से सभी प्रकार का आचार योग कहलाता है। विशेष रूप से स्थान (आसन आदि), वर्ण, अर्थज्ञान, आलम्बन और एकाग्रता (योग के प्रकार) हैं।

YOGA

Yoga is that process which joins the soul or self to moksha or emancipationı. Thus, the various aspects of religion are all called Yoga. Especialy the five facets of meditation–space, colour, meaning, path, and concentration;in other words—posture, vision, thought, goal and concentration

कर्मयोगं द्वयं तत्र, ज्ञानयोगं त्रयं विदुः ।
विरतेष्वेष नियमाद्, बीजमात्रं परेष्वपि ॥ 2 ॥

पांचों प्रकारों में कहे दो कर्म हैं त्रय ज्ञान हैं।
निश्चित रहे उनमें सकल या देशविरति-वान है।
पर जीव जो है मात्र सम्यक् दृष्टि उनमें योग भी।
अपुनर्बंधक में भी केवल बीज् रूपी हो सभी ॥ 2 ॥

उसमे दो कर्मयोग (क्रिया रूप) और तीन ज्ञान योग (ज्ञान स्वरूप) हैं । ये योग नियमतः विरतिवान् में अवश्श्यक होते हैं, अन्यों में भी बीज रूप होते हैं।

Of these, two are physical in dimension and three spiritual They are evident in the detached and dormant in others.

कृपानिर्वेदसंवेगप्रशमोत्पत्तिकारिणः।
भेदाः प्रत्येकमत्रेच्छाप्रवृत्तिस्थिरसिद्धयः ॥ 3 ॥

इच्छा प्रवृत्ति स्थैर्य सिद्धि भेद चारों ही कहा।
सब योग के ये भेद होते मर्म शास्त्रों का लहा॥
इनमें कृपा निर्वेद औ संवेग प्रशमोत्पत्ति है।
यों भेद कुल अस्सी बने ये शास्त्र की विज्ञप्ति है॥ 3 ॥

प्रत्येक योग के इच्छा, प्रवृत्ति स्थिरता और सिद्धि इस प्रकार चार-चार भेद होते हैं। ये कृपा, निर्वेद, संवेग और प्रशम को उत्पन्न करने वाले होते हैं।

Every yoga has four levels—desire, indulgence or practice, stability or concentration and achievement or purity These give rise to humility, detachment, spiritual craving and peace.

इच्छा तद्वत्कथाप्रीतिः, प्रवृत्तिः पालनं परम्।
स्थैर्य बाधकभीहानिः, सिद्धिरन्यार्थसाधनम्॥ 4 ॥

योगी कथा में प्रीति धरना यही इच्छा योग है।
वर यत्न से पालन करो यह शुभ प्रवृत्ति योग है।
अतिचार भय के त्याग को स्थिर योग शास्त्रों में कहा।
पर अर्थ की हो सिद्धि सिद्धि योग उसके मन बहा॥ 4 ॥

योगी की कथा में प्रीति होना यह इच्छा योग कहलाता है उपयोग पूर्वक पालन करना यह प्रवृत्ति योग, अतिचार के भयों का त्याग स्थिरतायोग और अन्यों के अर्थ का साधन करना यह सिद्ध योग कहलाता है।

To have liking for stories about yogis is evidence of this desire. To practise with perseverence is evidence of the level of indulgence. To be free of the fear of transgression is evidence of the level of stability. To care and work for the benefit of others is evidence of the level of purity.

अर्थालम्बनयोश्चैत्यवन्दनादौ विभावनम्।
श्रेयसे योगिनः स्थानवर्णयोर्यत्न एव च॥ 5 ॥

जिन चैत्यवंदन आदि शुभ अनुष्ठान में सुमिरण करें।
वर अर्थ आलंबन स्मरण कल्याण शुभ मन में भरें॥
निज स्थान में हो वर्ण में शुभ यत्न शुभ एकाग्रता।
उन योगिजन को प्राप्त हो कल्याण का स्थायी पता॥ 5 ॥

चैत्यवंदन आदि क्रियाओं में अर्थ और आलम्बन का स्मरण करना तथा स्थान और वर्ण में उद्यम करना यही योगियो के लिये कल्याण कर है।

During the acts like worship in a temple it is beneficial for a yogi to remember the meaning and the path. During practices it is beneficial to remember the colour and the space.

आलम्बनमिह ज्ञेयं, द्विविधं रूप्यरूपि च।
अरूपिगुणसायुज्ययोगोऽनालम्बनः परः ॥ 6 ॥

आलंबनं के भेद दो रूपी अरूपी हैं कहे।
उत्कृष्ट होता अनालंबन योग जो योगी लहे॥
हैं जो अरूपी सिद्ध उनके गुणों में तल्लीन हो।
योगी परम उसके हृदय में बजे शिव पद बीन हो॥ 6 ॥

रूपी और अरूपी ये आलम्बन के दो प्रकार है, उनमे अरूपी सिद्ध के स्वरूप के साथ तन्मयता रूप योग उत्कृष्ट अनालम्बन योग है।

There are two types of goals or targets of meditation, one with a form and another formless. To transcend into oneness with the formless siddha is the highest level of meditation and is known as Analmban Yoga

प्रीतिभक्तिवचोऽसङ्गैः, स्थानाद्यपि चतुर्विधम्।
तस्मादयोगयोगाप्तेर्मोक्षयोगः क्रमाद् भवेत्॥ 7॥

हैं प्रीति भक्ति वचन असंग प्रकार चार विवेचना।
ये स्थान आदिक योग में है भेद तत्त्व विचारणा॥
इस योग से क्रमशः अयोग स्वरूप योग मिले तदा।
मिलता परम पद मोक्ष तब निज में मगन रहता सदा॥ 7॥

प्रीति, भक्ति, वचन तथा असंग अनुष्ठान ये स्थानादि योग के चार प्रकार हैं। उस योग से योग-निरोध रूप योग की प्राप्ति होने से क्रमशः मोक्ष योग प्राप्त हो जाता है।

There are four of space yogas-fondness, devotion, word, solitude. With the help of these practices, detachment results and it gradually evolves into the ultimate moksha yoga.

स्थानाद्ययोगिनस्तीर्थोच्छेदाद्यालम्बनादपि ।
सूत्रदाने महादोष इत्याचार्याः प्रचक्षते ॥ 8 ॥

जो स्थान आदिक योग से है युक्त भी यदि ना पढ़े।
नये तीर्थ का विच्छेद हो फिर कौन पथ पर हम बढ़े ?
पर पूर्व के गीतार्थ आचार्यों ने सूत्रों में कहा।
उन योग विरहित को पढ़ाने में महादूषण कहा ॥ 8 ॥

"तीर्थ का उच्छेद होगा" इत्यादि आलम्ब्न से भी स्थान आदि योग से रहित को सूत्रदान करने मे महान् दोष है, ऐसा आचार्यों का कथन है।

The sages of the past have proscribed the teachings of scriptures for those who have no faith in the place yogas. Not even on the pretext that otherwise the religious organisation will disintegrate.

नियाग-28

यः कर्म हुतवान् दीप्ते, ब्रह्माग्नौ ध्यानध्याय्यया।
स निश्चितेन यागेन, नियागप्रतिपत्तिमान्॥ 1 ॥

उद्दीप्त कर ली है जिन्होंने ब्रह्म रूपी आग को।
वे ध्यान रूपी वेद ऋच से होमते सब कर्म को॥
निज की नियाग परम दशा मुनिराज वे ही पा गये।
निज भाव याग नियाग है कर शुद्ध पावन वे भये॥ 1 ॥

जिसने प्रदीप्त ब्रह्म रूप अग्नि मे ध्यान रूप वेद के मंत्र द्वारा कर्मों का होम किया हैं उस मुनि ने निश्चित ही भाव यज्ञ द्वारा नियाग को प्राप्त किया है।

Liberation

The sage who has offered karmas as oblution purifying them with meditation as the mantra from Vedas to the burning pyre in the form of Brahma has certainly earned liberation through the spiritual yajna.

पापध्वंसिनि निष्कामे, ज्ञानयज्ञे रतो भव।
सावद्यैः कर्मयज्ञैः किं, भूतिकामनयाविलैः ॥ 2 ॥

उस ज्ञान में अनुरक्त बन जो पाप का ध्वंसन करे।
वह यज्ञ ही वर यज्ञ है जो कामनाओं को हरे॥
सुख कामना युत पाप संयुत यज्ञ से क्या काम है ?
रे चेत मानव यज्ञ तो वह कर्म-बन्धन धाम है॥ 2 ॥

पाप का नाश करने वाला और कामना रहित ऐसे ज्ञान यज्ञ में तूं आसक्त बन। सुख की इच्छा द्वारा मलिन बने पाप सहित कर्म यज्ञों का क्या काम है ?

Indulge: in the yajna of knowledge that is devoid of desires and destroys sins. Of what use are the mundane or ritual yajnas that are tarnished with desire for pleasure and are full of sins ?

वेदोक्तत्वान्मनःशुद्ध्या, कर्मयज्ञोऽपि योगिनः।
ब्रह्मयज्ञ इतीच्छन्तः, श्येनयागं त्यजन्ति किम् ? ॥ 3 ॥

कोई कहे ये यज्ञ वेदों से कथित करणीय है।
मनशुद्धि द्वारा कर्म यज्ञ भी 'ब्रह्म' से तुलनीय है॥
जो ज्ञान योगी है उसे कुछ यज्ञ दोष लगे नहीं।
फिर श्येन यज्ञ का त्याग क्यों वे अज्ञ नर करते सही॥ 3 ॥

वेदोक्त होने से मन की शुद्धि द्वारा किया गया कर्म-यज्ञ भी ज्ञान योगी के लिये ब्रह्म यज्ञ समान है, ऐसा मानने वाले श्येन यज्ञ का फिर क्यों त्याग करते हैं।

There are those who propagate that, for a spiritual practitioner even the ritual-yajna as per the Vedas done with pure heart is like the ultimate yajna (Brahma yajna) Why, then, they abandon the sacrificial yajnas ?'

ब्रह्मयज्ञः परं कर्म, गृहस्थस्याधिकारिणः।
पूजादि वीतरागस्य, ज्ञानमेव तु योगिनः ॥ 4 ॥

अधिकार प्राप्त गृहस्थ श्री जिनराज की पूजा करे।
वो ब्रह्म यज्ञ क्रिया कहावे जो सुश्रावक आदरे।
पर योगिराजों के लिये तो ज्ञान ही सब सार है।
वर ज्ञान ही है ब्रह्म यज्ञ करे तिरे संसार है ॥ 4 ॥

अधिकारी गृहस्थ को मात्र वीतराग की पूजा आदि क्रिया ब्रह्म यज्ञ है और योगी के लिये तो ज्ञान ही ब्रह्म यज्ञ है।

For the worthy house-holder the worship of the Vitaraga and other related activities are like ultimate yajna For a Yogi the true knowledge is the ultimate yajna.

भिन्नोद्देशेन विहितं, कर्म कर्मक्षयाक्षमम्।
क्लृप्तभिन्नाधिकारं च, पुत्रेष्ट्यादिवदिष्यताम्॥ 5 ॥

ऐसी क्रिया से मोक्ष का उद्देश्य है जिसमें नहीं।
नहीं कर्म का क्षय हो सके, आधार अनुचित है सही॥
पुत्रेष्टि यज्ञ से ज्यों कभी क्षय कर्म का होता नहीं।
फिर अन्य लक्षित कर्म से क्षय कर्म होता है कहीं॥ 5 ॥

भिन्न यज्ञ से किया गया अनुष्ठान कर्म क्षय करने मे असमर्थ होता है। जैसे भिन्न अधिकार की कल्पना वाला पुत्र प्राप्ति के लिये किया जाने वाला यज्ञ।

Performance of the yajna ritual for some specific purpose does not help wiping of Karmas As it can not be expected of the son-giving yajna to yield any thing other than a son

ब्रह्मार्पणमपि ब्रह्म-यज्ञान्तर्भावसाधनम्।
ब्रह्मग्नौ कर्मणो युक्तं, स्वकृतत्वस्मये हुते ॥ 6 ॥

निज में छिपे मद मान को ही यज्ञ में होमो सदा।
सब ब्रह्म को अर्पण करो यह ब्रह्म यज्ञ परम मुदा॥
कर्तापने का भाव रूपी मान जब जलता रहे।
वर ब्रह्म रूपी आग में तो ब्रह्म यज्ञ मनसि बहे॥ 6 ॥

ब्रह्म यज्ञ में अन्तर भाव का साधन ब्रह्म को अर्पण करना भी ब्रह्म रूप अग्नि मे कर्म का और स्व कर्तृत्व के अहंकार का हवन करने पर ही युक्त होता है।

The ultimate (Brahma) yajna, where all feelings and thoughts are amalgamated in the Brahma (the creator), can be performed only if all the Karmas and the ego of being the "doer" are vanquished in the ultimate fire

ब्रह्मण्यर्पितसर्वस्वो, ब्रह्मदृग् ब्रह्मसाधनः ।
ब्रह्मणा जुह्वदब्रह्म, ब्रह्मणि ब्रह्मगुप्तिमान् ॥ 7 ॥

वर ब्रह्म को सर्वस्व जिस निर्ग्रन्थ ने अर्पण किया।
दृष्टि भी ब्रह्म में ब्रह्म ही है ज्ञान साधन का दीया॥
उपयोग रूपी ब्रह्म से अज्ञान होमे जो सदा।
वर ब्रह्मचारी साधु हो ना लिप्त पापों से कदा॥ 7 ॥

जिसने ब्रह्म में सर्वस्व अर्पण किया है, ब्रह्म में ही जिसकी दृष्टि है, ब्रह्म रूप ज्ञान ही जिसका साधन है और ब्रह्म के द्वारा ब्रह्म मे जो अब्रह्म का हवन करता है, जो ब्रह्म गुप्ति वाला है।

He who has submitted all to the Brahma, who sees only the Brahma, whose only goal as Brahma, who burns everything other than pure in the ultimate fire through this submission is the true detacched ascetic.

ब्रह्माध्ययन निष्ठावान् परब्रह्मसमाहितः ।
ब्राह्मणो लिप्यते नाघैर्नियागप्रतिपत्तिमान् ॥ 8 ॥

जो ब्रह्म के अभ्यास में ही रत रहे निर्ग्रन्थ वो।
पर ब्रह्म में एकाग्रता से युत समाधिवन्त जो ॥
निज भाव यज्ञ स्वीकारता निज ब्रह्म में विहरे सदा।
निर्ग्रन्थ वे मुनिराज पापों से न लिप्त बने कदा ॥ 8 ॥

ब्रह्म अध्ययन में जो निष्ठावान् है, पर ब्रह्म में समाहित है और नियाग को जिसने प्राप्त कर लिया है ऐसा ब्राह्मण (निर्गन्थ) कभी पाप से लिप्त नही होता।

Further, he who is true to the study of Brahma, who has amalgamated the self with the Brahma and attained liberation, such an ascetic (Brahman) is never consumed by sin.

भावपूजा-29

दयाम्भसा कृतस्नानः, सन्तोषंशुभवस्त्रभृत्।
विवेकतिलकभ्राजी, भावनापावनाशयः ॥ 1 ॥

जल ले दया का स्नान कर संतोष उज्ज्वल चीर धर।
निज भाल को सुविवेक रूपी तिलक से संयुक्त कर॥
आशय परम पावन हृदय की शुद्धतम हो भावना।
तुम रोज निज सुविशुद्ध आतम की करो शुभ पूजना ॥ 1 ॥

दया रूपी पानी से जिसने स्नान किया है, संतोष रूप उज्ज्वल वस्त्र धारण लिये हैं, विवेक रूप तिलक से शोभायमान है, शुभ भावनाओ से पवित्र आशय वाला है।

Spiritual Worship

Taking a bath with the water of compassion, wearing the clean white dress of contentment, painting the Tilak (a spot of paint on the forehead) of rational judgement on the forehead, and with a purpose purified by auspicious intent worship your own purified self

भाक्त श्रद्धानघुसृणोन्मिश्रपाटीरजद्रवैः ।
नवब्रह्माङ्गतो देवं, शुद्धमात्मानमर्चये ॥ 2 ॥

भक्ति तथा श्रद्धान चंदन युक्त केसर रस भरो।
नव ब्रह्म वाड़ स्वरूप नौ अंगों की फिर पूजा करो।
भीतर छिपी जो आतमा वही देव है, पूजो उसे।
चैतन्य रूप स्वरूप ही है और तूं पूजे किसे ॥ 2 ॥

भक्ति और श्रद्धा रूप केसर मिश्रित चंदन के द्वारा शुद्ध आत्म देव की नव प्रकार के ब्रह्मचर्य रूप नव अंगों की तूं पूजा कर।

Worship the pure soul by putting spots of the auspicious mixture of sandal wood of devotion and saffron of faith on the nine parts of the conceptual body of the pure soul that is Brahma,

क्षमापुष्पस्त्रजं धर्मयुग्मक्षौमद्वयं तथा।
ध्यानाभरणसारं च, तदङ्गे विनिवेशय ॥ 3 ॥

माला सुगन्धित पुष्प की रूपी क्षमा की नित चढ़ा।
निश्चय तथा व्यवहार रूपी वस्त्रद्वय निज हित चढ़ा॥
सद् ध्यान रूपी श्रेष्ठ भूषण कंठ में आरोप कर।
आनंद पाओ यों निजातम देव अंग सुपूज कर॥ 3 ॥

उस शुद्ध आत्म देव को क्षमा रूप फूल की माला अर्पण कर, निश्चय और व्यवहार धर्म रूप दो वस्त्र तथा ध्यान रूप श्रेष्ठ अलंकार अर्पण कर।

To that pure soul offer the garland of the flowers of benevolence, two aparrels of ultimate and mundane viewpoints, and the best ornament of meditation.

मदस्थानभिदात्यागैर्लिखाग्रे चाष्टमङ्गलम्।
ज्ञानाग्नौ शुभसङ्कल्पकाकतुण्डंच धूपय॥ 4 ॥

वर स्वस्तिकादि अष्ट मंगल आत्म मुख लेखन करो।
यों आठ मद के स्थान का परित्याग कर मंगल भरो।
श्रुत आग में संकल्प का कृष्णागरू का धूप कर।
आनंद पाओ यों निजातम देव अंग सुपूज कर॥ 4 ॥

उस परमात्मा के सामने आठ मद स्थानो के त्याग रूप अष्ट मंगल का आलेखन कर और ज्ञान रूप अग्नि मे शुभ संकल्प रूप कृष्णागरु का धूप कर।

Draw before the conceptual form of pure soul the eight auspicious things in the form of abandonment of eight types of egos. Offer the insence by burning the fragrant powder of good resolution in the fire of knowledge.

प्राग्धर्मलवणोत्तारं, धर्मसन्न्यासवह्नियना।
कुर्वन् पूरय सामर्थ्यराजन्नीराजनाविधिम्॥ 5 ॥

संन्यास धर्म स्वरूप अग्नि आत्म सम्मुख प्रगट कर।
क्षय और उपशम धर्म रूपी लवण उस अग्नि से हर॥
सामर्थ्य योग स्वरूप फिर विधि आरती की पूर्ण कर।
आनंद पाओ यों निजातम देव अंग सुपूज कर॥ 5 ॥

धर्म संन्यास रूप अग्नि के द्वारा पूर्व का क्षायोपशमिक धर्म रूप लून उतारता हुआ सामर्थ्य योग रूप देदीप्यमान आरती की विधि पूर्ण कर।

Perform the brilliant Arati-ritual in the form of proficiency in Yoga by curing it with the fumes of the state of disciplining and destroying the past karmas, emanating out of the fire of asceticism.

स्फुरन् मङ्गलदीपं च, स्थापयानुभवं पुरः।
योगनृत्यपरस्तौर्यत्रिकसंयमवान्भव ॥ 6 ॥

अनुभव स्वरूपी दीप मंगल आत्म सम्मुख प्रगट कर।
फिर योग संयम रूप नाटक पूजना श्रद्धान भर॥
संगीत भी वर नृत्य भी वार्जित्र भी एकत्र हो।
तीनों के ऐक्य समान संयमी जो बनो शिर छत्र हो ॥ 6 ॥

अनुभव रूप स्फुरायमान् मंगल दीप की शुद्ध आत्म देव के समक्ष स्थापना कर। संयम योग रूप नाट्य पूजा मे तत्पर बना हुआ तूं गीत नृत्य और वांजित्र इन तीनों के समूह के जैसा संयम वाला बन।

Install the burning auspicious lamp of experience before the pure soul. Then prepare yourself for the Natya–Puja (ritiual worship by music and dance) by disciplining yourself like the synchronized song, dance and orchestra (choreography).

उल्लसन्मनसः सत्यघण्टां वादयतस्तव।
भावपूजारतस्येत्थं, करक्रोडे महोदयः ॥ 7 ॥

मन भाव के उल्लास में फिर सत्य घंट निनाद हो।
एकाग्रता हो- आत्म में नहिं कोई वाद विवाद हो॥
तल्लीनता ऐसी परम शुभ भाव पूजा में बने।
उसके लिये तो मोक्ष कर में प्राप्त करता इक क्षणे ॥ 7 ॥

उल्लसित मन से सत्य रूप घण्ट वादन करता हुआ और भाव पूजा मे लीन बना हुआ तेरा मोक्ष तेरी हथेली में ही है।

Sounding the gong of truth with the blissful attitude, loose your identity in the spiritual worship and the liberation will come within your reach

द्रव्यपूजोचिता भेदोपासना गृहमेधिनाम्।
भावपूजा तु साधूनामभेदोपासनात्मिका ॥ 8 ॥

है दो प्रकारे द्रव्य-भावे शास्त्र में पूजा कही।
है द्रव्यपूजा तो गृहस्थों के लिये मानो सही॥
पर साधु जन गण के लिये तो भाव पूजा योग्य है।
कर भाव पूजा मोक्ष पाते यत्र शिव पद भोग्य है॥ 8 ॥

गृहस्थों को भेद पूर्वक उपासना रूप द्रव्य पूजा योग्य है और अभेद उपासना रूप भाव पूजा तो साधुओ को ही योग्य है।

There are two types of worship. One is the physical, done through material things with seperate identities suitable for the house-holders and the other the spiritual, done through thought and feelings with fusion of identities, suitable for the asceties.

ध्यान–30

ध्याता ध्येयं तथा ध्यानं, त्रयं यस्यैकतां गतम्।
मुनेरनन्यचित्तस्य, तस्य दुःखं न विद्यते ॥ 1 ॥

ध्याता वही है ध्येय भी है ध्यान भी जिसके वही।
तीनों ही जिनके एक हैं वे दुःख पा सकते नहीं॥
मुनिराज जो इक चित्त हैं निज आत्म में लयलीन हैं।
उनके हृदय में ध्यान की सुख की बजे नित बीन है॥ 1 ॥

ध्याता ध्येय और ध्यान इन तीनों की एकरूपता को जिसने प्राप्त कर लिया है ऐस एकाग्रचित्त मुनि को कोई दुःख नही होता।

Meditation

That absolutely poised ascetic who accomplishes the fusion of subject, object and process in meditation, becomes free of all sorrows.

ध्याताऽन्तरात्मा ध्येयस्तु, परमात्मा प्रकीर्तितः ।
ध्यानं चैकाग्र्यसंवित्तिः, समापत्तिस्तदेकता ॥ 2 ॥

ध्याता है अन्तरातमा है ध्येय तो परमातमा ।
है ध्यान मति-एकाग्रता निज आत्म में जलती शमां ॥
तीनों बने जब इक समापत्ति कहावे एकता ।
एकत्व में मन रमण हो तो प्राप्त-हो निज दिव्यता ॥ 2 ॥

ध्यान करने वाला अन्तरात्मा है ध्येय परमात्मा को कहा गया है और ध्यान एकाग्रता की बुद्धि है। इन तीनों की एकता को समापत्ति कहा जाता है।

The subject or the individual who meditates is the soul. The object of meditation is the super or pure soul. Concentration of thoughts is meditation or the process. Coming together of these three is called Samapatti or fusion.

मणाविव प्रतिच्छाया, समापत्तिः परात्मनः।
क्षीणवृत्तौ भवेद् ध्यानादन्तरात्मनि निर्मले॥ 3 ॥

मणि में पड़े ज्यों बिंब का प्रतिबिंब निर्मल सुन्दरम्।
हो जाय नष्ट मलीन वृत्ति निजात्म तो बनती वरम्॥
निर्मल विमल मन-में पड़े प्रतिबिंब प्रभुवर का परम्।
वह ध्यान कहलाता समापत्ति परम सुखसागरम् ॥ 3 ॥

जिस प्रकार मणि मे अन्य वस्तु का प्रतिबिम्ब दिखाई देता है उसी प्रकार क्षीण वृत्ति वाले शुद्ध-निर्मल अन्तरात्मा में ध्यान द्वारा परमात्मा का प्रतिबिम्ब दिखाई देता है, इसी को समापत्ति कहते हैं।

As in a clear rock-crystal bead is seen a reflection of other things, in a pure soul with vanishing desires is seen the reflection of the super-soul This is termed as Samapatti or fusion

आपत्तिश्च ततः पुण्यतीर्थकृत्कर्मबन्धतः ।
तद्भावाभिमुखत्वेन, सम्पत्तिश्च क्रमाद् भवेत् ।। 4 ।।

अति पुण्य रूपी तीर्थपति का बंध हो समापत्ति से।
उस कर्म से फल प्राप्त हो आपत्ति नाम कहे जिसे ।।
अनुक्रमे तीर्थंकर महापद के समक्ष बढ़े यदा।
अनमोल संपत्ति रूप परिणति प्राप्त होती है तदा ।। 4 ।।

उस समापत्ति से पुण्य प्रकृति रूप तीर्थकर नाम कर्म्र के बंध स्वरूप फल की प्राप्ति होती है और तीर्थकर नाम कर्म की अभिमुक्ता से क्रमशः आत्मिक संपत्ति रूप फल होता है।

This fusion gives rise to virtuous transformations that result in acquisition of Tirthankar-nam-karma (the karma that causes birth as a Tirthankar). This culminates in the unparalelled bliss of ultimate transformation into the pure and liberated state.

इत्थं ध्यानफलाद्युक्तं, विंशतिस्थानकाद्यपि।
कष्टमात्रं त्वभव्यानामपि नो दुर्लभं भवेत्॥ 5॥

वर वीशस्थानक साधना भी ध्यान फल से युक्त है।
जो भव्य प्राणी साधते बनते करम से मुक्त है॥
दुर्लभ नहीं जग में अभव्यों के लिए यह साधना।
शिवफल उन्हें मिलता न होती कष्ट कर आराधना॥ 5॥

इस प्रकार के ध्यान फल से ही वीशस्थानक आदि तप भी योग्य हैं। कष्ट मात्र रूप तप तो इस संसार में अभव्यों को भी दुर्लभ नहीं हैं।

The penances like Vishasthanak are also beneficial like the results of such meditation. And there are other simple penances which are not impossible to do even for the unworthy.

जितेन्द्रियस्य धीरस्य प्रशान्तस्य स्थिरात्मनः।
सुखासनस्थस्य नासाग्रन्यस्तनेत्रस्य योगिनः ॥ 6 ॥

जीती सभी निज इन्द्रियों को धीर है जो शान्त है।
निज चेतना में चपलता ना, आत्म स्थिर है दान्त है ॥
निजनेत्र द्वय को नासिका के अग्र परिसर स्थिर किया।
उस ध्यान योगी की न उपमा ढूंढलोकरलेदीया ॥ 6 ॥

जो जितेन्द्रिय है, धैर्यशाली है, प्रशान्त है, जिसकी आत्मा स्थिर है, सुखासन पर स्थित है, जिसने नासिका के अग्रभाग पर अपनी दृष्टि का स्थापन किया है, जो योग सहित है।

One who has absolute control over the senses, who is composed and serene, whose soul is unwavering, sitting in a convenient posture who has focused his gaze on the tip of his nose, and who is meditating

रुद्धबाह्यमनोवृत्तेर्धारणाधारया रयात्।
प्रसन्नस्याऽप्रमत्तस्य, चिदानन्दसुधालिहः ॥ 7 ॥

निज ध्येय में स्थिर धारण का धार वेग बढ़ा दिया।
ब्रह्मेन्द्रियों में लीन मन की वृत्ति रोकी, स्थिर किया ॥
मन में कलुष ना, अप्रमादी ज्ञान का अमृत पिया।
शुभ ध्यान में ही योगिजन का रमण करता है जिया।

ध्येय में मन की स्थिरता रूप धारण की सतत धारा के वेग से जिसने बाह्य इन्द्रियों का अनुसरण करने वाली मन की वृत्ति को रोका है, जो प्रसन्न मन वाला है, प्रमाद रहित है, ज्ञाननन्द रूप अमृत का आस्वादन करने वाला है।

With the force of a continuous flow of serenity emerging out of the deep concentration on the goal, he has disciplined the attitudes that are stirred by senses Who has joyous mind, who is free of illusions and enjoys the nectar of bliss of knowledge—

साम्राज्यमप्रतिद्वन्द्वमन्तरेव वितन्वतः।
ध्यानिनो नोपमा लोके, सदेवमनुजेऽपि हि॥ 8॥

अन्तर् जगत में ही निजातम राज्य को विस्तारते।
ना शत्रु है ना युद्ध है सारी सीमायें लांघते॥
नर लोक में या देव जग में घट सके ना ओपमा।
वंदन करे उस योगी को हम ध्यान पथ में जो रमा॥ 8॥

अपनी अन्तर् आत्मा मे ही विपक्ष रहित अपने साम्राज्य का विस्तार करता हुआ ऐसे ध्यानवंत साधको की देवलोक और मनुष्य लोक मे भी वास्तव में कोई उपमा नही है।

He who expands his inner empire where exists no adversary. There exists no metaphor on earth or in heaven for such a meditating sage.

तप–31

ज्ञानमेव बुधाः प्राहुः, कर्मणां तापनात्तपः।
तदाभ्यन्तरमेवेष्टं, बाह्यं तदुपबृंहकम् ॥ 1 ॥

जो कर्म का पातन करे उस ज्ञान को ही तप कहा।
तप अन्तरंग ही इष्ट है पंडित करे महिमा महा॥
अन्तर् तपस्या को बढ़ावे बाह्य तप तो तप सही।
पर इष्ट अन्तर् मात्र है तप बाह्य का साधन ग्रही ॥ 1 ॥

कर्मो को तापने वाला होने से तप यह ज्ञान ही है ऐसा ज्ञानियो ने कहा है।(तप के दो भेदों में से) अन्तरंग तप ही इष्ट है, बाह्य तप तो उसका सहायक अर्थात् उसकी वृद्धि करने वाला है।

Penance

As it burns Karmas, Tap (penance) is nothing but knowledge, so say the sages. Out of the two types the desired one is the inner penance. The outer one is only of supportive nature

आनुश्रोतसिकी वृत्तिर्बालानां सुखशीलता।
प्रातिश्रोतसिकी वृत्तिर्ज्ञानिनां परमं तपः ॥ 2 ॥

जो लोक धारा का करे अनुसरण वे अनजान हैं।
सुख शील में डूबा रहे अज्ञान पूरित गान है॥
पर गुरु ज्ञानी प्रवाह सम्मुख अभय निर्भय चालते।
उनका परम उत्कृष्ट तप है ताप से अघ तापते॥ 2 ॥

सुखशीलता भरी संसार के प्रवाह का अनुसरण करने वाली वृत्ति अज्ञानियों की होती है और संसार के प्रवाह के विपरीत अर्थात् सम्मुख ऐसा परम तप यह ज्ञानियो की वृत्ति हैं।

To follow the pleasure seeking tendencies is for ingnorants. To go against the mundane flow is the ultimate penance done by the sages

धनार्थिनां यथा नास्ति, शीततापादि दुस्सहम्।
तथा भवविरक्तानां, तत्त्वज्ञानार्थिनामपि ॥ 3 ॥

इस जगत में धन प्राप्ति के पीछे मनुज जो दौड़ते।
नहिं ताप की नहीं शीत की परवाह हृदय में धारते ॥
जग से विरक्ति मन भरी वे तत्त्व-ज्ञानार्थी सदा।
हो शीत चाहे ताप हो दुःसह नहीं लगते कदा ॥ 3 ॥

जिस प्रकार धन के अभिलाषी के लिये सर्दी गर्मी आदि के कष्ट दुस्सह नही होते उसी प्रकार संसार से विरक्त तत्त्व ज्ञान के अभिलाषी (साधकों) के लिये भी कोई कष्ट दुस्सह नही होता।

The desire and pursuit of wealth makes the pain of heat or cold tolerable. Similarly for the detached ones in pursuit of spiritual knowledge there is no pain difficult to tolerate.

सदुपायप्रवृत्तानामुपेयमधुरत्वतः।
ज्ञानिनां नित्यमानन्दवृद्धिरेव तपस्विनाम् ॥ 4 ॥

सुन्दर उपायों में प्रवर्तित ज्ञानियों के मन सदा।
आनंद ही आनंद बढता भाव मन रमते मुदा॥
क्योंकि नजर सम्मुख रहे नित मोक्ष की मीठास है।
शिव प्राप्ति ही इक साध्य है शिव प्राप्ति की ही आश है॥ 4 ॥

सद् उपाय में प्रवृत्त ज्ञानी ऐसे तपस्वियों को मोक्ष रूप साध्य के मिठास से हमेशा आनंद की वृद्धि ही होती है।

The sages indulging in right endeavour are the ascetics for whom the sweetness of the goal of liberation is ever increasing.

इत्थं च दुःखरूपत्वात्, तपो व्यर्थमितीच्छताम्।
बौद्धानां निहता बुद्धिर्बोधानन्दाऽपरिक्षयात् ॥ 5 ॥

आनंद का नहीं नाश होता देख बौद्ध विचारते।
कुंठित बनी उनकी मति ज्ञानी पुरुष धिक्कारते ॥
तप दुःख रूपी मात्र है, यों बौद्ध जन जो मानते।
तप का न कोई अर्थ है निष्फल उसे वे जानते ॥ 5 ॥

"इस प्रकार दुःख रूप होने से तप निष्फल है" ऐसी मान्यता वाले बौद्धो की बुद्धि कुंठित बनी हुई है क्योंकि बुद्धि जनित अन्तरग आनंद की धारा कभी खण्डित नही होती। (अर्थात् तप में भी आत्मिक आनंद की धारा अखण्डित होती है)

The beleif that being a source of pain penance is worthless has dulled the wit of Buddhists They forget that the inner stream of bliss flowing out of wisdom is never blocked, not even by penance.

यत्र ब्रह्म जिनार्चा च, कषायाणां तथा हतिः ।
सानुबन्धा जिनाज्ञा च, तत्तपः शुद्धिमिष्यते ॥ 6 ॥

तप शुद्ध वर ज्ञानी गुरु भगवंत ने उसको कहा ।
जिसमें जिनेश्वर पूजना हो, ब्रह्मचर्य विपुल रहा ॥
जिसमें कषायों की रहे हर पल हृदय में क्षीणता ।
अनुबंध युत परमात्म की आज्ञानुपालन तीव्रता ॥ 6 ॥

जिसमें ब्रह्मचर्य है, जिन पूजा है, कषायों का क्षय है तथा अनुबंध सहित जिनाज्ञा प्रवर्तमान है वह तप शुद्ध कहलाता है।

That which includes celibacy, worship of the Jina, erosion of passions, and discipline of the tenets of the Jina is called pure penance.

तदेव हि तपः कार्यं, दुर्ध्यानं यत्र नो भवेत्।
येन योगा न हीयन्ते, क्षीयन्ते नेन्द्रियाणि च ॥ 7 ॥

पल के लिये भी ध्यान विकृत ना कभी जिसमें बने।
संयम क्रियाओं में भी हो ना हानि यों हो इक मने॥
नहिं इन्द्रियां भी क्षीण हो निज कार्य में संलग्न हो।
ऐसे परम तप में सदा युग लगन से अति मग्न हो॥ 7 ॥

निश्चय से वही तप करने योग्य है जिसमें दुर्ध्यान नही होता, जिसमे मन वचन काया के योगों की हानि नही होती और इन्द्रियो का क्षय नही होता।

Indeed, that penance is worth doing which is devoid of ill feelings, which does not reduce the unison of mind, speech, and body, and which does not cause the decay of senses.

मूलोत्तरगुणश्रेणिप्राज्यसाम्राज्यसिद्धये ।
बाह्यमाभ्यन्तरं चेत्थं, तपः कुर्याद् महामुनिः ॥8 ॥

निज में रमे जो मूल गुण उत्तर गुणों की वृद्धि हो ।
गुण राज्य की सुविशालता की एक मन में सिद्धि हो ॥
इसलिये साधु करे सदा तप बाह्य आभ्यन्तर युगल ।
तप जो करे वो महान् है, मिट जाय सारा कर्म मल ॥ 8 ॥

मूल गुण और उत्तर गुण की श्रेणि रूप विशाल साम्राज्य की सिद्धि के लिये महामुनि बाह्य और आभ्यन्तर तप करें।

The great sages indulge in inner and outer penance in order to acquire the great empire of fundamental and resultant virtues.

सर्वनयाश्रय–32

धावन्तोऽपि नयाः सर्वे, स्युर्भावे कृतविश्रमाः।
चारित्रगुणलीनः स्यादिति सर्वनयाश्रितः ॥ 1 ॥

निज पक्ष सिद्धि विधान साधन हेतु सब नय दौड़ते।
वे नैगमादि सभी तो आखिर वस्तु भाव में ठहरते॥
चारित्र गुण सम्पन्नता में लीन साधु विचारते।
मुनि सर्व नय आश्रित रहे मुनि सब नयों को मानते॥ 1 ॥

अपनी-अपनी मान्यता को सिद्ध करने के लिए दौड़ते हुए भी सभी नय वस्तु के उस-उस स्वभाव में स्थिर होते हैं। चारित्रगुण में लीन बना हुआ साधु सभी नयों का आश्रय करने वाला होता है।

Holistic View

To prove their specific views all the Nayas (Parameters) approach different specific properties of a thing. But the ascetic following the code of conduct adopts the holistic view point that encompasses all the Nayas.

पृथगनया मिथः पक्ष-प्रतिपक्षकदर्थिताः ।
समवृत्तिसुखाऽऽस्वादी, ज्ञानीसर्वनयाश्रितः ॥ 2 ॥

सब नय परस्पर वाद से प्रतिवाद से हो विडम्बना ।
ज्ञानी मुनि मन में रखे सुख लीन बन सम भावना ॥
ज्ञानी सदा माने हैं सच्चे नय सभी निज अर्थ में ।
ज्ञानी नयाश्रित मानता फिर द्वेष क्यों हो व्यर्थ में ॥ 2 ॥

अलग-अलग नय परस्पर वाद प्रतिवाद से विडंबित है । समभाव के सुख का अनुभव करने वाले महामुनि सर्व नयों के आश्रितं होते हैं ।

Individual Nayas are plagued with ambiguity arising out of clash of purpose. The great sages embracing all Nayas enjoy the bliss of equanimity.

नाऽप्रमाणं प्रमाणं वा, सर्वमप्यविशेषितम्।
विशेषितं प्रमाणं स्यादिति सर्वनयज्ञता॥ 3॥

सब वचन अविशेषित हैं जो अप्रमाण है न प्रमाण है।
एकांत निर्णय ज़ो करे औचित्य में व्यवधान है॥
सविशेष वचन प्रमाण होते शास्त्र यों कहते सदा।
यों सर्व नय का ज्ञान हो स्याद्वाद दृष्टि से मुदा॥ 3॥

सभी वचन विशेष रहित हो तो एकान्त से वे न अप्रमाण है, न प्रमाण ही है, विशेष सहित ही प्रमाण है. इस प्रकार सभी नयो का ज्ञान होता है।

A statement without specifc parameters may be true as well as false. It is true only with a specific parameter. It is through Syadvad (Jain principle of relativity of thought/truth) that all the Nayas can be known

लोके सर्वनयज्ञानां, ताटस्थ्यं वाऽप्यनुग्रहः।
स्यात्पृथङ्.नयमूढानां,, स्मयार्तिर्वाऽतिविग्रहः ॥ 4 ॥

नय सकल के ज्ञाता जनों के मन रहे सम भावना।
माध्यस्थ्य मति उपकार मति से पूर्ण मन की साधना॥
पर अलग नय की मान्यता में मूढ़ नर जो हो गया।
अभिमान में अतिक्लेश में मन सकल उसका खो गया॥ 4 ॥

लोक मे सभी नयो के जानकार को माध्यस्थ भाव अथवा उपकार बुद्धि होती है। अलग-अलग नयो मे मोहग्रस्त (आत्मा) को अभिमान की पीड़ा अथवा अत्यंन्त क्लेश होता है।

He who has knowledge of all the Nayas attains the equanimous or balanced state and is full of beneficence He who is attached to different Nayas is an illusioned soul suffering acute agony of conceit.

श्रेयः सर्वनयज्ञानां, विपुलं धर्मवादतः।
शुष्कवादाद्विवादाच्च, परेषां तु विपर्ययः ॥ 5 ॥

ज्ञाता सकल नय वाद के जो धर्मवाद सदा करे।
कर धर्मवाद करे स्वपर कल्याण मन अमृत भरे॥
एकांत दृष्टि बनी जिन्हों की शुष्क वाद किया करे।
हठवाद शुष्क विवाद से जग में अमंगल ही भरे॥ 5 ॥

सभी नयों को जानने वालों का धर्मवाद से बहुत कल्याण होता है। अन्य एकान्त दृष्टि वालो का तो शुष्कवाद और विवाद से अकल्याण ही होता है।

Those who know all the Nayas are followers of true spiritualism that is beneficent. Those who are confined to the bias of one specific Naya invite harm through abstract logic and dry debate.

प्रकाशितं जनानां यैर्मतं सर्वनयाश्रितम्।
चित्ते परिणतं चेदं, येषां तेभ्यो नमो नमः ॥ 6 ॥

नय सर्व आश्रित रूप प्रवचन जगत को जिसने दिया।
स्याद्वाद का गंभीर विश्लेषण अमी भर भर पिया॥
जिनके हृदय में सर्वनय की वचन परिणति हुई प्रगट।
उनको करुं मैं वंदना नित खोल अपना हृदय घट ॥ 6 ॥

जिन महापुरुषों ने सभी नयों से आश्रित प्रवचन लोगों के लिए प्रकाशित किया है और जिनके चित्त में (वह प्रवचन) परिणत हो गया है उनको वारम्वार नमस्कार हो।

Salutations to the great sages whose enlightening precepts are based on all Nayas, and also to those who have understood and absorbed those precepts

निश्चये व्यवहारे च, त्यक्त्वा ज्ञाने च कर्मणि।
एकपाक्षिकविश्लेषमारूढाः शुद्धभूमिकाम् ॥ 7 ॥

निश्चय तथा व्यवहार ज्ञान क्रिया नयों में जो चढ़े।
स्थित एक जो पक्षीय भ्रांति छोड़ आगे जो बढ़े॥
शुभ ज्ञान परिणति रूप निर्मल भूमिका आधार है।
ज्ञाता सकल नय के जो हैं उनकी सदा जयकार है॥ 7 ॥

निश्चय नय मे, व्यवहार नय मे, ज्ञान में और क्रिया नय मे एक पक्ष मे स्थित भ्रांति के स्थान को छोड़कर शुद्ध भूमि का पर आरुढ़ और...।

Leaving the bias of specific Nayas like Nishchaya (absolute), Vyavahar (Practical), Jnana (Knowledge), and Kriya (action), those who transcend to the pure state –

अमूढलक्ष्याः सर्वत्र, पक्षपातविवर्जिताः ।
जयन्ति परमानन्दमयाः सर्वनयाश्रयाः ॥ 8 ॥

चूके नहीं निज लक्ष्य को जो पक्षपात रखे नहीं ।
आनंद में बन मगन मन सर्वत्र जो नभ तल मंही ॥
शुभ ज्ञान परिणति रूप निर्मल भूमिका आधार है ।
ज्ञाता कल नय के जो हैं उनकी सदा जयकार है ॥ 8 ॥

जो लक्ष्य से विचलित नही है, सर्वत्र पक्षपात से रहित है, परमानन्द रूप सभी नयों के आश्रय भूत ऐसे ज्ञानी जयवन्त रहते हैं ।

who are unwavering in pursuit of their goal, who are always and everywhere unbiased, who are the adodes of the blissful unison of all Nayas, they are always successful. They are always victorious.

उपसंहार

पूर्ण मगन स्थिर मोह-त्याग युत ज्ञान शान्त इन्द्रिय-जेता।
त्याग क्रिया रत तृप्त बने निर्लेप निःस्पृही मन वेत्ता।
विद्या युत मुनि विवेकधारी है मध्यस्थ भयमुक्त मुनि।
आत्म-निंदना तत्त्व -दृष्टि समृद्धिवान् मुनि महागुणी ॥ 1 ॥

कर्म विपाकी ध्यान मग्न उद्विग्न बने भवसागर से।
लोक-रंजना मुक्त युक्त शास्त्रों से मुक्त परिग्रह घर से ॥
अनुभव योग नियाग भाव वर ध्यान तपस्या संयुत है।
सर्वनयाश्रय इन बत्तीसों से मुनि प्रतिपल अच्युत है ॥ 2 ॥

इसके चिंतन से प्रतिपल बनता है साधु विमल अमल।
प्रकृति से विकृति मिट जाती संस्कृति धार बहे कल कल ॥
नित्य करे स्वाध्याय ग्रन्थ का दृढ़ चारित्र बने मुनिवर।
ज्ञान-क्रिया के सुगम योग से प्राप्त करे पद अजरामर ॥ 3 ॥

Epilogue : The thirty two subjects discussed in this book and listed here are the virtues that make the foundation on which the edifice of spiritualism is raised The ascetic who understands and absorbs and follows it can be steadfast in his practices. Through daily reading and pondering over it an ascetic may go far in his pursuit of the goal of liberation.

प्रशस्ति

ज्ञानसार जो आत्मसार है बड़ा अनूठा अमृत फल।
उपाध्यायजी ने विरचा विरति प्रेरक यह ग्रन्थ प्रबल॥
तपगच्छ गगने दिनकर सम अध्यात्म क्षेत्र में चमक रहे।
यशो विजयजी पूज्य प्रवर दल सहस कमलवत् महक रहे ॥1 ॥

विक्रम दोय सहस अडतालीस ज्ञान पंचमी शुभ पल में।
अष्टक पद्यों में कृत अनुदित मोद मना मन मंगल में॥
पूना नगरे चौमासा मुनि मुक्तिप्रभ की प्रेरणया।
हिन्दी में मणिप्रभसागर गणि ने कीना अनुवाद नया॥ 2 ॥

नभ में रवि त्यों जिन शासन में चमके खरतरगण उज्ज्वल।
सूरि जिनेश्वर अभयदेव महिमा छाई नभ से भूतल॥
दादा दत्त चन्द्र मणिधारी कुशल चन्द्र जग उपकारी।
सुखसागर जिन हरि श्रीमज्जिन कान्ति सूरि शुद्धाचारी॥ 3 ॥

उपाध्याय श्री यशोविजय जी ने विरचा यह ग्रन्थ भला।
कान्ति शिष्य मणि ने हिन्दी में लिखी कृति सुन्दर सुफला॥
अमरदीप है जिन शासन में खरतरगच्छ की व्यापकता।
गुरु गण के गुण मैं क्या गाऊं सुरगुरु भी नहिं गा सकता ॥4 ॥